प्रतिक्रमण विधि संग्रह

पहला परिच्छेद

(१) उपोद्घात

"प्रतिक्रमण" आवश्यक का एक अध्याय है, पर छह आवश्यकों में इसकी प्रधानता होने से "षडावश्यकों" का भी "प्रतिक्रमण" नाम से उल्लिखित किया जाता है, अतः हम भी इस प्रबंध के षडावश्यक सम्बन्धी होने पर भी इसका नाम "प्रतिक्रमण विधिसंग्रह" रखना उपयुक्त समझते हैं।

आवश्यक सूत्र के कर्त्ता–

"नंदी तथा "पाक्षिक" सूत्र आदि में आवश्यक सूत्र के लिए निम्न प्रकार के उल्लेख मिलते हैं—

"से आवस्सए छव्विहे पन्नत्ते. तंजहा–सामाइयं १, चउव्वीस-त्थओ २, वंदणयं ३, पडिक्कमणं ४, काउस्सग्गो ५, पच्चक्खाणं ६,"

अर्थात्--वह आवश्यक छह प्रकार का कहा है, जैसे–सामायिक १ चतुर्विंशतिस्तव २, वंदनक, ३, प्रतिक्रमण ४, कायोत्सर्ग ५ प्रत्याख्यान ६।

आवश्यक सूत्र के कर्त्ता के सम्बन्ध में अनेक स्थलों में 'आवश्यकं श्रुतस्थविरकृतं" ऐसे उल्लेख मिलते हैं, तब क्वचित् इसे "गणधर प्रणीत होना भी सूचित किया है। प्रथम तथा अन्तिम तीर्थङ्करों

के साधुओं का धर्म "सप्रतिक्रमण" कहा गया है। आज भी इतना तो निश्चित है कि भगवान महावीर के श्रमण नित्य प्रतिक्रमण करते थे। इससे प्रमाणित होता है कि उस समय में भी आवश्यक सूत्र तो था ही, भले ही आधुनिक सूत्र की तरह स्वतन्त्र न होकर द्वादश गणिपिटकान्तर्गत किसी अंग श्रुत में उसका समावेश किया हुआ हो। यदि हमारे इस अनुमान के अनुसार आवश्यक श्रुत पूर्व काल में अंग-प्रविष्ट होगा तो निश्चित रूप से वह "गणधर कृत" कहला सकता है। परन्तु जैन सूत्र लिखे जाकर व्यवस्थित हुए, उस समय में आवश्यक श्रुत अंग-प्रविष्ट नहीं था, ऐसा श्री नन्दी सूत्र के निरूपण से सिद्ध होता है। नन्दी सूत्रकार भगवान श्री देवर्द्धि गणि-क्षमा श्रमणजी ने आवश्यक श्रुत का अनंगप्रविष्ट के रूप में उल्लेख किया है, अनंग प्रविष्ट-श्रुत के दो विभाग करते हुए क्षमा श्रमण जी ने एक विभाग में "आवश्यक" और दूसरे में "आवश्यक व्यतिरिक्त औपपातिकादि उपांगों" का निर्देश किया है, इससे यह बात सूचित होती है कि आवश्यक श्रुत पूर्वकाल में द्वादशांगी के ही अन्तर्गत होगा पर कालान्तर में अन्य उपांगों की तरह आवश्यक सूत्र भी अंग सूत्र में से पृथक करके एक भिन्न श्रुत स्कंध के रूप में व्यवस्थित किया होगा। इसी से पिछले टीकाकारों ने इसकी श्रुत स्थविर कर्तृकता मानी होगी, इस अपेक्षा से आवश्यक सूत्र को गणधर रचित भी कह सकते हैं और श्रुत स्थविर कृत भी।

नाम की सार्थकता—

इस सूत्र का "आवश्यक" यह नाम अन्वर्थक है, इस सम्बन्ध में निर्युक्तिकार कहते हैं—

> "समणेण' सावएण य अवस्सकायव्वयं हवइ जम्हा।
> अन्तो अहो""नि निसिस्स य। तम्हा आवस्सयं नाम ॥१॥"

अर्थात्–साधु और श्रावक का रात्रि, दिन के अन्त में अवश्य कर्तव्य प्रतिपादक होने से इसका नाम "आवश्यक" पड़ा है, इसी प्रकार आवश्यक के प्रत्येक-अध्ययन के नाम भी सार्थक हैं, परन्तु इन सब अध्ययनों का विस्तृत विवरण करके हम इस प्रबन्ध को लम्बा नहीं करना चाहते। हमारा मुख्य उद्देश्य प्रतिक्रमण-विधियों का निरूपण करने का है, इसलिए प्रतिक्रमण और इसकी कर्तव्य विधियों का ही प्रतिपादन करेंगे।

प्रतिक्रमण का शब्दार्थ—

"स्वस्थानाद् यत् परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः।
तत्रैव क्रमणं भूयः, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥१॥"

अर्थात्-'अपने स्थान से अर्थात् कर्तव्य मार्ग से प्रमाद के वश होकर परस्थान अर्थात् अकर्तव्य मार्ग में चला गया हो तो वहां से फिर कर्तव्य मार्ग में आना इसका नाम "प्रतिक्रमण' है।

प्रतिक्रमण आज किया जाता है और जिनकाल तथा स्थविर काल में भी किया जाता था। पूर्व कालीन और वर्तमान कालीन हमारे प्रतिक्रमण में कितना अन्तर पड़ा होगा? इसका उत्तर देना अशक्य नहीं तो दुःशक्य तो अवश्य ही है। कारण कि कालातीत और क्षेत्रातीत परिस्थितियों का विचार वर्तमान परिस्थिति की दृष्टि से किया जाय तो वह विचार मौलिक परिस्थिति का स्पर्श नहीं कर सकता। जिनकाल अर्थात् भगवान महावीर के समय को आज ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। स्थविर काल को भी पन्द्रह सौ वर्षों से भी अधिक वर्ष हो गये हैं। इतने लम्बे काल की परिस्थिति का वर्तमानकालीन परिस्थिति से कई बातों में विषम होना स्वा-

भाविक है। जिनकाल में जैन श्रमणों का [illegible]
पूर्व के भारतीय प्रदेशों में होता था। [illegible]
विहार क्षेत्र में से छूटकर विहार का केन्द्रस्थान मध्यभारत बना था।
उसके बाद निर्ग्रन्थ श्रमण समुदाय उससे भी पश्चिम की तरफ [illegible]
लगा था। इस प्रकार भिन्न-भिन्न काल और भिन्न भिन्न क्षेत्रों के प्रभाव
हमारे आचारों और अनुष्ठानों पर पड़े थे। इस परिस्थिति में आज
कोई यह कहे कि आज के हमारे आचार-अनुष्ठानों जैसे ही पूर्वकाल
में भी थे, तो यह कथन वास्तविकता से कुछ दूर हो जायगा। मानव
स्वभाव की सुखशीलता के कारण उसके आचार तथा क्रियाओं में
प्रतिक्षण परिवर्तन आया करता है, पर मनुष्य को तत्काल इसका
भान नहीं होता। आज के अपने भिन्न-भिन्न देशों की लिपियां सूत्र-
कालीन ब्राह्मी लिपि के ही परिवर्तित रूप हैं। इसी प्रकार सूत्रकालीन
मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी आदि प्राचीन भाषाओं से उत्पन्न
भाषाओं से उत्पन्न आज की हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला
आदि भाषाएं हैं। फिर भी इनका जन्मदात्री मूलभाषाओं के साथ
इतना अन्तर पड़ गया है कि इन भाषाओं का परस्पर सम्बन्ध है
यह भी कोई समझ नहीं सकता। जैसे लिपियों और भाषाओं पर देश
काल का असर पडता है वैसे ही साधुओं और गृहस्थधर्मियों के
आचार-अनुष्ठानों पर देशकाल का जबर्दस्त असर पड़ता है।

जिनकाल में और स्थविरकाल में हमारे प्रतिक्रमण की क्रिया
किस प्रकार की थी, यह कहना कठिन है। कारण कि मूल सूत्रों में
इसकी विस्तृत विधियाँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं, प्राचीन नियुंक्तियों
में अथवा [illegible] इस विषय का व्यवस्थित विधान उपलब्ध नहीं
[illegible] में इसका प्रतिपादन

होगा भी तो यह वर्तमान पंचांगी में से प्रकीर्ण ग्रन्थों, चूर्णियों अथवा टीकाओं को छोड़कर अन्य अंगों, उपांगों में दृष्टिगोचर नहीं होता। आवश्यकचूर्णि लगभग विक्रम की ६ठी शती के अन्त में निर्मित प्राकृत टीका ग्रंथ है। इसमें साधु प्रतिक्रमण की विधि का व्यवस्थित निरूपण है। श्रमण प्रतिक्रमण का निरूपण बहुश्रुत आचार्य श्री हरिभद्र सूरिजी के पंचवस्तुक ग्रंथ में भी मिलता है।

पर श्रावक प्रतिक्रमण की विधि का प्रतिपादन १०वीं शती के उत्तरार्ध में निर्मित श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र की आचार्य जयसिंह सूरि कृत चूर्णि और श्रीचन्द्रकुलीन श्री पार्श्व सूरि कृत श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र विवृत्ति में दृष्टिगोचर होता है। इससे प्राचीन किसी भी सूत्र तथा ग्रंथ में श्राद्ध प्रतिक्रमण विधि का निरूपण नहीं मिलता। इसी कारण से अंचल गच्छ के प्रवर्तक आचार्यों ने प्रारंभ में श्रावक प्रतिक्रमण का ही प्रतिषेध किया था, क्योंकि वे सूत्र पंचांगी के सिवाय किसी भी सुविहित परम्परा को प्रामाणिक नहीं मानते थे। इस गच्छ के पिछले आचार्यों को अपने पूर्वजों की उक्त मान्यता भूल भरी ज्ञात हुई। उन्होंने अपने गच्छ की उन मान्यताओं में संशोधन किया। इस गच्छ की मौलिक और आज की अधिकांश मान्यताओं में आकाश-पाताल जितना अन्तर पड़ गया है।

धर्मानुष्ठानों के विधानों में साधुओं की मुख्यता--

प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में साधु की मुख्यता होने से उसका निरूपण भी साधु के उद्देश्य से ही किया जाता था, पर इसका अर्थ यह नहीं होता था कि यह अनुष्ठान केवल साधु का ही कर्तव्य है। अंचल गच्छ के आचार्यों ने प्रथम यह वस्तु लक्ष्य में नहीं ली, पर अंत में उन्होंने अपने विचारों में संशोधन करना उचित समझा।

हम ऊपर आवश्यक निर्युक्ति की गाथा लिख आये हैं, उस गाथा में आवश्यक श्रमण तथा श्रावक दोनों का अवश्य कर्त्तव्य है, यह सूचित किया है। चूर्णिगत प्रतिक्रमण विधि के निरूपण में श्रावक का नाम न आया, यह कुछ लेखक की भूल न थी पर साधु तथा श्रावक की क्रिया में नाम मात्र के ही फेरफार होते थे, उनकी क्रियाओं में किंचित् भेद है जो स्वयं समझा जा सके ऐसा जान कर "श्राद्ध प्रतिक्रमण विधि का" पृथक् प्रतिपादन नहीं किया गया।

श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र के कर्त्ता—

वर्तमान श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र के कर्त्ता कौन थे ? इस प्रश्न के उत्तर में कोई कोई बताते हैं कि इसका कर्त्ता "ढंक" नामका कुम्हार श्रावक था। किन्तु हम इस कथन को महत्व नहीं दे सकते क्योंकि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ या प्रकरण में इस विषय का उल्लेख नहीं है। इस सूत्र पर १० वीं शती के पूर्व की चूर्णि अथवा टीका भी उपलब्ध नहीं है, इससे सिद्ध होता है कि "आधुनिक श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र वंदितु" अनुमानतः ७ वीं ८ वीं शती का सन्दर्भ होना चाहिये। कई लोग इस सूत्र की "तस्स धम्मस्स केवलिपंन्नत्तस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए" इस गाथा की परवर्ती गाथाओं को अर्वाचीन और प्रक्षिप्त मानते हैं, किन्तु वस्तु स्थिति इस तरह की नहीं है, कारण कि इस सूत्र के प्राचीन से प्राचीन टीकाकारों ने भी अपनी टीकाओं में उक्त गाथाओं की व्याख्या की है।

नये गच्छों की प्रतिक्रमण सामाचारियां—

ग्यारहवीं शताब्दी तक सब गच्छों में प्रतिक्रमण सामाचारी प्रायः एक थी। किसी तरह का उसमें भेद न था। बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में उत्पन्न होने वाले गच्छों में भी अञ्चल गच्छ के

"वृहद्गच्छ" और उस पर से निकले हुए "आगमगच्छ" भिन्न पड़ रहे थे। दूसरे सबों का आधार "आवश्यक चूर्णि" था, तब "बृहद् गच्छ" के श्रमण समुदाय 'महा निशीथ" के "ईर्यापथिकी" प्रतिक्रमण सम्बन्धी एक सामान्य विधान को महत्व देकर सामायिक दंडक उच्चारण के पूर्व "ईर्या पथिकी" प्रतिक्रमण के पक्ष में हुए। उन सब गच्छों में से जो जो गच्छ आज विद्यमान हैं वे सर्व अपने २ पूर्वाचार्यों की "ईर्या पथिकी" प्रतिक्रमण सम्बन्धी परम्परा का ही अनुसरण करते हैं।

सूत्रोक्त साधुसामाचारी—

सामाचारी मूलसूत्र के अनुसार कहूंगा जो सर्वदुःखों से मुक्त करने वाला है और जिसका आचरण करके निर्ग्रंथ संसार समुद्र को तिरे हैं।

प्रथमा-आवश्यकी, दूसरी नैषेधिकी, तीसरी आपृच्छना, चौथी प्रतिपृच्छना, पंचमी छंदना, छठ्ठी इच्छाकार, सातवीं मिथ्याकार, अष्टमी तथाकार, नवमी अभ्युत्थान और दशवीं उपसम्पदा यह साधुओं की दशांग सामाचारी कही हैं।

दशविध सामाचारी के स्थान—

गमन में आवश्यकी करें, अपने निवास स्थान में प्रवेश करते समय नैषेधिकी करें, अपना कार्य करने के समय आपृच्छा करे, दूसरे का कार्य करते समय प्रतिपृच्छा करे, प्राप्तद्रव्य जात से छन्दना करे, कार्य प्रवृत्ति कराते समय इच्छाकार करे, अपनी भूल की निन्दा में मिथ्याकार करे, गुरु या वडील के वचन के स्वीकार में 'तथाकार' करे, गुरु के अपने निकट आने पर 'अभ्युत्थान' करे और उनकी

निश्रा में रहे इसका नाम 'उपसम्पदा' सामाचारी है। इस प्रकार क्रम को 'दशविध' सामाचारी बताई है।

दशविध सामाचारी का निर्देश करके अब ओघ "सामाचारी" का निरूपण करते हैं।

सूर्य उदय के बाद दिन के प्रथम चतुर्थ भाग में उपकरणों की प्रतिलेखना कर गुरु को वन्दनपूर्वक हाथ जोड़कर पूछे 'भगवन् अब मुझे क्या क्या करना चाहिये? आपकी इच्छानुसार मुझे किसी भी कार्य में नियुक्त कीजिये, वैयावृत्य में अथवा स्वाध्याय में।' यदि गुरु वैयावृत्य में नियुक्त करे तो ग्लानि लाये बिना वैयावृत्य करे और सर्वदुःख से मुक्त करने वाले स्वाध्याय में नियुक्त करे तो अग्लानि से स्वाध्याय करे। इस प्रकार ओघ सामाचारी के मौलिक कर्तव्यों के निर्देश करके अब समय का विवेक बताते हैं।

प्रथम औत्सर्गिक दिनकृत्य बताते हैं—

दिवस के चार भाग करके चतुर 'भिक्षु' उन चारों ही दिन विभागों में उत्तर गुणों का साधन करे। प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय करे, द्वितीय पौरुषी में सूत्रार्थ चिन्तन रूप ध्यान करे। तीसरी पौरुषी में भिक्षाचर्या करे और चौथी पौरुषी में फिर स्वाध्याय करे।

पौरुषी ज्ञान का उपाय--

आषाढ़ मास में दो पग परिमित छाया रहने पर, पोष में चार पग छाया रहने पर, चैत्र तथा आश्विन महीनों में तीन पग छाया रहने पर पौरुषी होती है।

सात अहोरात्रों में एक अंगुल छाया बढ़ती घटती है। एक पक्ष में दो अंगुल छाया बढ़ती घटती है और मास ...

बढ़ती घटती है।

तिथि किन-किन महीनों में घटती है, यह नीचे बताते हैं

१ आषाढ कृष्ण पक्ष में २ भाद्रपद कृष्ण पक्ष में, ३ पौष कृष्ण पक्ष में, ४ फाल्गुन कृष्ण पक्ष में और ५ वैशाख कृष्ण पक्ष में क्षय तिथियाँ आती हैं।

किस महीने में कितने अंगुल छाया का दिवस के चतुर्थांश में प्रक्षेप करने से उस महीने में पौरुषी पूर्ण होती है, यह बताते हैं-

ज्येष्ठ, आषाढ और श्रावण के दिवस के चतुर्थ भाग में छः अंगुल का प्रक्षेप करने में प्रतिलेखना का समय होता है। इसी प्रकार भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक मास के दिन चतुर्थांश में आठ अंगुल का प्रक्षेप करने से पौरुषी आती है। मार्गशीर्ष, पौष और माघ इन तीन महीनों के दिन चतुर्थांशों में दश अंगुलों का प्रक्षेप करने से पौरुषी आती है और चतुर्थ त्रिक अर्थात् फाल्गुन, चैत्र और वैशाख महीनों के दिन चतुर्थांश मे आठ अंगुलों का प्रक्षेप करने से इन तीन महीनों की पौरुषी पूर्ण होती है।

अब रात्रि कृत्यों का काल विभाग बताते हैं-

विचक्षण साधु रात्रि को भी चार विभागों में बांट कर उन चारों में उत्तर गुणों की साधना करे।

प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय, द्वितीय पौरुषी में ध्यान और तृतीय पौरुषी में निद्रा फिर चतुर्थ पौरुषी में स्वाध्याय करे।

रात्रि में शयन विधि इस प्रकार है--

[illegible] पौरुषी पूर्ण होने पर गुरु के पास जाकर [illegible] कहे "[illegible] श्रमण ! पौरुषी संपूर्ण हो गई है रात्रि [illegible]" [illegible]

गुरु-आज्ञा प्राप्त करके प्रथम प्रस्रवण-भूमि में जाये, कायिकी लघु शंका मिटाके जहां संस्तारक करना है वहां जाये। वहां उपधि के विषय में उपयोग कर उपधि का डोरा छोड़े और संस्तारक और उत्तर पट्टक की प्रतिलेखना कर दोनों को शामिल कर पूर्व भाग पर रखे, फिर संस्तारक भूमिका प्रमार्जन करे और उत्तर पट्टक सहित संस्तारक को उस स्थान पर बिछाये और उसपर बैठकर मुहपत्ति से ऊपर के शरीर की प्रमार्जना करे, रजोहरण से निचले शरीर का प्रमार्जन करे और ओढ़ने के वस्त्र वाम भाग में रखे फिर संस्तारक पर चढ़कर गुरु अथवा उनकी निश्रा में रहता है। उन वडील के आगे कहे-'ज्येष्ठार्य ! संस्तारक की आज्ञा दीजिये।' फिर तीन बार सामायिक दंडक पढ़कर सोये।

सोने की विधि यह है—

संस्तारक पर सोने की आज्ञा लेकर बाहुरूपी उपधान (तकिया) कर पैर संकुचित करके वाम पार्श्व पर सोये, इस प्रकार सोता हुआ थक जाये तब भूमि प्रमार्जन करके कुक्कुट की तरह पैर लम्बा करे।

संडासक संकोचित करके सोये, अगर पार्श्व परिवर्तन करना हो तो प्रथम शरीर प्रतिलेखना करके पार्श्व बदले। उस समय द्रव्यादि का उपयोग करे, श्वास को रोके और आंखें खोलकर देखे।

प्रतिक्रमण विधि

[आवश्यक चूर्णि के आधार से]

दैवसिक—

स्थंडिलादिभूमियां ऐसे समय में प्रतिलेखी जावे कि जिसके अन्त में सूर्यास्त हो और उसके बाद तुरन्त ही प्रतिक्रमण किया जाय उसकी विधि इस प्रकार है—

प्रतिक्रमण दो प्रकार से होता है, व्याघातिम और व्याघात रहित। जो व्याघात बिना का प्रतिक्रमण होता है उसमें गुरु के साथ सभी साधु प्रतिक्रमण करते हैं, यदि गुरु श्रावकों को धर्मोपदेश करने आदि में रुके हुए हों तो साधुओं के साथ आवश्यक करने में व्याघात खड़ा होता है। जिस समय प्रतिक्रमण करना है वह समय धर्मोपदेशात्मक व्याघात से बीत जाता है, अतः ऐसे प्रसंग व्याघात कहलाते हैं। ऐसे प्रसंगों में गुरु और उनका निषद्याधर दोनों पीछे से चारित्राचार के अतिचारों के चिन्तनार्थ कायोत्सर्ग करते हैं, दूसरे साधु गुरु को पूछ कर गुरु के स्थान के पीछे यथा रत्नाधिक नजदीक और दूर बैठ जाते हैं क्योंकि यही उनका स्वस्थान गिना जाता है। वहां बैठकर प्रतिक्रमण करने वालों ...

प्रकार से ह

श्री यत्याचार प्रतिक्रमण मण्डली—
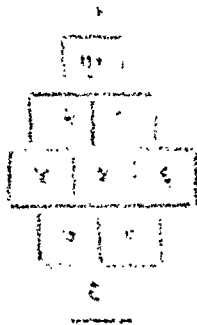
गुरु पीछे से आकर अपने स्थान पर बैठें उनसे पूर्व ही दूसरे साधु बांयी ओर के पृष्ठ भाग से और दायीं ओर के अग्रभाग भाग से होकर अपने अपने स्थानों में आकर बैठ जाते हैं।

आवश्यक चूर्णि के आधार पर दैवसिक प्रतिक्रमण विधि—

कृतिकर्म के बाद गुरु का आवश्यक किया जाता है। आवश्यक निर्व्याघात होता है और व्याघातिम भी। अगर आवश्यक निर्व्याघात हो तो गुरु के साथ सब साधु आवश्यक करते हैं। अगर गुरु श्रावकों के सामने धर्मकथा करने में व्याकुल हों तो गुरु और उनका निषद्या-धर दोनों बाद में कायोत्सर्ग करते हैं, फिर साधु गुरु को पूछकर गुरु स्थान के पीछे निकट और दूर यथारात्निक के क्रम से जिसका जो स्थान आता हो वह वहां आकर बैठ जाते हैं।

'गुरु पच्छा ठायंतो, मज्झेण गंतुं सट्ठाणे ठायति, जे वामतो ते पगांतरं गन्तेण गंतुं सट्ठाणे ठायंति जे दाहिण ओ अग्गंतरमपरक्खेवेणं तं चेव दाहिणं ठायंति, गुणरक्खणत्थं हेतुं, तत्थ य पुव्वमेव ठायंता "करेमि भंते सामाइयं" इति सुत्तं करेंति, जाहे पच्छा गुरु सामाइयं करेंति ताहे पुव्वट्ठितावि तं सामाइयं करेंति सेसं कंठं। जो होज्जा ॥१५६४॥ पविसंतो आपुच्छणादि सोधितकज्जाव-ज्झाण परो अच्छति,

जाहे गुरु ठांति सेण आगतं तं का तु' आवस्सगं अग्गोन्ते तिण्णि व्युतिओं करेंति अथवा एगा एगसिलोइगा, वितिया विसिलोइया, तइया तिसिलोइया, तेसिं समत्ती ए काल वला पडिलेहण विधी इमा कातव्वा।"

(आवश्यक चूर्णि उत्तर भा० प्र० २२९-३०)

निर्व्याघात प्रतिक्रमण में मंडली में जाते ही सर्व प्रथम सामायिक सूत्र वोलते हैं। सामायिक सूत्र वोलकर अर्थ चिन्तन करते हैं। जब आचार्य वोसिरामि' यह कहें तब शेष साधु भी अतिचार चिन्तनादि पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनादि करते हैं। कोई आचार्य कहते हैं—जब आचार्य सामायिक सूत्र पढ़ते हैं तब वे वैसे ही मन में चिन्तन करते हैं। प्रथम सूत्र का चिन्तन कर मुहपत्ति प्रति-लेखनादि करते हैं, वैसा करके जब तक आचाय कायोत्सर्ग में स्थित हों तब तक अन्य श्रमण मन में अनुप्रेक्षा करते हैं, सर्व दिवस सम्बन्धी अतिचारों का चिन्तन करके जितने दैवसिक अतिचार हों उन सब को मन में याद करके कायोत्सर्ग पारने के वाद उन दोषों को आलोचना से अनुलोम और प्रतिसेवना से अनुलोम हृदय में स्थापन करें। उन सब की समाप्ति के वाद जब तक आचार्य कायोत्सर्ग नहीं पारते अन्य साधु अपने मन में धर्म-ध्यान और शुक्ल ध्यान का चितन करें, आचार्य अपनी दिन भर की प्रवृत्तियों तथा चेष्टाओं को दो वार चिन्तन करें, इतने समय में अतिप्रवृत्ति वाले साधु अपनी चेष्टाओं के सम्बन्ध में एक वार चितन कर सकते हैं। इस प्रकार दैवसिक प्रतिक्रमण समझना चाहिये।

रात्रिक प्रतिक्रमण में रात्रिक अतिचार होते हैं। पाक्षिक चातुर्मासिक, सांवत्सरिक अतिचार नहीं होते इस कारण से दिवस

शब्द का ग्रहण किया है। कायोत्सर्ग "नमो अरिहंताण" यह पढ़कर पारते हैं और ऊपर चतुर्विंशतिस्तव पढ़ते हैं, फिर धर्म विनयमूलक है इस कारण से वंदना करने की इच्छा वाला शिष्य संडाशक प्रतिलेखन करके बैठकर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करता है। मस्तक पर्यन्त उपरिकाय का प्रमार्जन कर परम विनय के साथ त्रिकरण विशुद्ध कृतिकर्म करे बाद खड़ा होकर यथारात्निक दोषों को गुरु के सामने प्रकट करे। अगर कोई अतिचार नहीं है तो शिष्य के "संदिसह" यह कहने पर गुरु को "पडिक्कमह" ऐसा कहना चाहिये। यदि कोई अतिचार हो तो उसका प्रायश्चित "पुरिमड्ढ" आदि लेते हैं। जैसा गुरु प्रायश्चित दें, उसको उसी तरह करना चाहिए। प्रायश्चित न करने से अनवस्थादि दोष होते हैं। वन्दन के अनन्तर आलोचना के बाद सामायिक सूत्र और उसके बाद ज्ञानदर्शनचरित्रों की विशुद्धि के लिये उपविष्ट प्रतिक्रमण सूत्र से प्रशस्त स्थानों में जैसे अपनी आत्मा स्थित हो वैसे करे। पूर्वोक्त विधि से वन्दन, क्षामणक पूर्वक "प्रतिक्रांत" इसी सूचनात्मक निवेदन करके आचार्य को वंदन कर शेष साधुओं को भी खमाना चाहिये। यहाँ यह सूत्र-गाथा बोले "आयरिय उवज्झाए × × × सव्वस्स समणसंघस्स०" इस सम्बन्ध से वन्दना के बाद क्षमापन करे फिर शेष जीवों को भी खमावे, बाद में चारित्राचार की विशुद्धि के लिए सामायिक सूत्र पढ़कर कायोत्सर्ग दण्डक यावत् "तस्स उत्तरीकरणेणं" यहाँ से लेकर 'वोसिरामि' कहकर कायोत्सर्ग करना, तीनों कायोत्सर्गों में श्वासोच्छ्वास एक सौ होते हैं, उनमें प्रथम चरित्र का कायोत्सर्ग होता है पच्चास श्वासोच्छ्वास होते हैं, उनको समाप्त करके नामोत्कीर्तना कर "सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं वंदण वत्तिया ए० इत्यादि पढ़कर

ऐसा न होने से अविनय होता है। आचार्य कुछ अर्थ विशेष कहना चाहते हों अथवा प्रायश्चित विशेष कहना चाहते हों अथवा आचार्य किसी के लिये अतिचार की मर्यादा स्थापित करना चाहते हों, अगर भूली हुई कोई बात कहना चाहते हों तो कह सकें। स्तुतियाँ एक श्लोकादि वर्धमान पद अक्षर वाली, अथवा वर्धमान

कार्य कर। ये शाम की विधि कही है। अब प्रभात में विधि क्या है सो कहते हैं।

रात्रिक प्रतिक्रमण विधि—

"पढमं सामाइयं कातूणं चरित्तविसोधिनिमित्तं का उस्सग्गो, कीरइ चउवीसत्थयं कड्डितूणं,दंसणविसेधिनिमित्तं वितिओ, ततिओ सुतणाण मिसोहि निमित्तं, तत्थ राइया तियारे चिंतेति तथा थुतीणं अवसाणा वा आरंभ जाव इमो ततिओं काउस्सग्गोत्ति पमाणं कि एत्थ ? सुत्तं गोसद्धं सतस्स पढमे पणुवीसा, वितिये विपणुवीसा ततिएणत्थि पमाणं। तत्थ आयरियो अप्पणो अतियारे चिंते तूण उस्सारेति जेण पुयट्ठिता सथेवि, ततो वंदणगं, ततो आलोयणा, ततोपडिक्कमणं ततो पुणरवि वंदणगं, खामणं, ततो सामाइयाणंतरं का उस्सग्गो, ततो पच्चरवाण, गुणधारणानिमित, तत्थ चिंतेति-"कम्हि नियोगेणिउत्ता गुरू हिं, तो तारिस तवं संपडिवज्जिस्सामि, साहुणा य किर चिंते तव्वं-छम्मास खमणं जाव करेमि, ण करेज्जा, एगदिवसेण ऊणागं करेतु जाव पंच मास ४-३-२-१ अद्ध मासो, चउत्थं आयंबिलं एवं एगट्ठाणं, एगासणं, पुरिमड्ढ णिव्वीय-पोरूसी णमोकारोत्ति। अज्जत्तणगाओंय किर कल्लं जोग वुड्ढी का तव्वा। एवं वीरियायारो ण विराधितो भवति, अप्पायणिद्धाडितो भवति जं समत्थो कातुं तं हिदये करेति (२६३-४) उस्सारेत्ता संथवं कातुं पच्छा वंदित्ता पडिवज्जति सव्वेहि विणमोक्कार इत्तेहिं समगं ऊट्ठेतव्वं, एवं सेसएसु वि पच्चक्खाणेसु पच्छा, तिण्णी थुतीओ अप्पसद्दे हिं तहेव भण्णंति जथा घर कोई लियादि सत्ता। ण उट्ठेंति, कालं वंदित्ता निवेदिलि, जदि चेतियाणि अत्थि तो वंदंति। थुति अवसाणे चेव पडिलेहणा, मुहणंतगादिं, संदिसह पडिलेहेमि। बहु

वेला य। एवं च कालं तुलं तूणं पडिक्कमन्ति, जया ततिया पुत्तं भाणिता पडिलेहण वेला य होति। × × एवं ता देवसिये भणितं।"

भावार्थ—प्रथम "करेमि भंते" इत्यादि सामायिक सूत्र पढ़कर चारित्र विशुद्धि निमित्तक कायोत्सर्ग करें। दूसरा चतुर्विंशतिस्तव पढ़कर दर्शनविशुद्धिकारक कायोत्सर्ग करे, तीसरा श्रुतज्ञान विशुद्धि निमित्तक कायोत्सर्ग करे। इसमें रात्रि के अतिचार चितवे तथा स्तुतियों की समाप्ति से लेकर यावत् यह तीसरा कायोत्सर्ग होता है। इनमें श्वासोच्छ्वासों का क्या प्रमाण है? प्रथम कायोत्सर्ग में २५, दूसरे में भी २५ और तीसरे में प्रमाण नहीं है। इसमें आचार्य अपने अतिचारों का चिन्तन करके कायोत्सर्ग पारते हैं, तब पूर्व स्थित सर्व साधु भी कायोत्सर्ग पारते हैं। फिर वंदन करते हैं फिर आलोचना और प्रतिक्रमण सूत्र पाठ फिर वंदना, क्षामणक, कायोत्सर्ग और बाद में प्रत्याख्यान गुण धारण निमित्तक कायोत्सर्ग में चितन करते हैं। गुरु ने किस कार्य में मुझको जोड़ा है इसका विचार करके सार्थक तप का चिंतन करना चाहिये ताकि आचार्य निर्दिष्ट कार्य की हानि न हो। "क्या छ मासिक उपवास करूं? यह नहीं होगा। एक दिन कम छ मास करूं" यह भी नहीं होगा पञ्च मास, चार मास तीन मास, २—१ अर्धमास, चतुर्थ भक्त, आयंबिल, इसी प्रकार एक स्थान, एकाशन, पुरिमड्ढ, निर्विकृतिक, पौरुषी, नमस्कार सहित तक तप का चितन करें, जो तप करना हो वहां तक चिंतन करके कायोत्सर्ग पारे। आज जो तप किया है—उससे कल योगवृद्धि करनी चाहिये। जिससे वीर्याचार्य की विराधना न हो और आत्मा भी निर्धारित हो, फिर कायोत्सर्ग को पार कर "लोगस्स उज्जोयगरे" बोलकर वदना पूर्वक गुरु के पास प्रत्याख्यान करे। जितने भी एक

प्रकार का प्रत्याख्यान करने वाले हों, वे सब एक साथ उठें। पच्चक्खाण करके पीछे धीमे शब्द से तीन स्तुतियां बोलें, जिससे छिपकली आदि शिकारी प्राणी न उठें और बाद में वंदनपूर्वक काल निवेदन करे, यदि वहां जिन प्रतिमाएँ हों तो उनका वंदन करे। स्तुति की समाप्ति के बाद ही मुहपत्ति आदि की प्रतिलेखना करें "संदिसह मुहपत्तियं पडिलेहेमि" इस प्रकार आदेश ले। प्रतिलेखना के अंत में "बहुवेला" के भी आदेश ले। इस प्रकार काल की तुलना करके प्रतिक्रमण किया जाय जैसे तीसरी स्तुति पढ़ने के अनंतर ही प्रतिलेखना का समय हो जाय। उपर्युक्त रात्रि प्रतिक्रमण की विधि कही है।

पाक्षिक विधि इस प्रकार है—दैवसिक प्रतिक्रमण करने के बाद गुरु के बैठने के बाद शिष्य कहते हैं—"हे क्षमाश्रमण! पाक्षिक क्षामणक करना चाहते हैं" यह कह करके क्षामणक का पाठ बोले, "अब्भुट्ठियोमि" पाठ से कम से कम ३ को और अधिक से अधिक सबको क्षामणक करे/बाद में गुरु उठकर यथारात्निकतया खमाते हैं। दूसरे भी यथा रात्निकतासे खमाते हैं और सब कहते हैं "इमं देवसियं पडिक्कंतं" यह दैवसिक प्रतिक्रमण किया। पाक्षिक प्रतिक्रमण कराइये, तब पाक्षिक प्रतिक्रमण सूत्र कहते हैं—पाक्षिक प्रतिक्रमण कहकर मूल गुण उत्तर गुणों में जो खंडन विराधन किया हो उसके प्रायश्चित्त के निमित्त ३०० श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग किया जाता है। कायोत्सर्ग पार कर "लोगस्स" कहते हैं। फिर बैठकर मुख वस्त्रिका की प्रतिलेखना करके वंदना करते हैं, बाद पाक्षिक विनयातिचारों को खमाते हैं। दूसरे में शिष्य काल गुण का संस्तवन करते हैं जैसे "पियं च जंभे हट्ठाणं"× गुरुविभणंति साहूहिं समं।

दूसरा परिच्छेद

श्रमण-प्रतिक्रमण-विधि--

(पाक्षिकसूत्रचूर्ण्यनुसारी)

यहाँ 'साधु' सायंकालीन सर्व कर्त्तव्य करके सूर्यास्तमन वेला में सामायिकादिसूत्र पढ़कर दिवस सम्बन्धी अतिचारों के चिन्तन के लिए कायोत्सर्ग करते हैं। उसमें रात्रिक मुहपत्ति प्रतिलेखना से लगाकर अधिकृत चेष्टा कायोत्सर्ग पर्यन्त दिवस के अतिचारों का चिन्तन करते हैं। उसके बाद नमस्कार से कायोत्सर्ग पाकर चतुर्-विंशतिस्तव पढ़ते हैं. फिर संडाशक प्रतिलेखना करके उकड़ बैठकर मस्तकपर्यन्त ऊपर के शरीर का प्रमार्जन करते हैं और परम विनय पूर्वक त्रिकरण शुद्ध कृतिकर्म करते हैं। इस प्रकार वन्दना कर खड़े होकर दोनों हाथों में रजोहरण पकड़कर शरीर को कुछ नवां-कर पूर्व चिंतित दोषों को यथारात्निक-क्रम से साधु की भाषा में जिस प्रकार गुरु अच्छी तरह सुने, उस प्रकार प्रवर्धमान संवेग भाव वाले, कपट अहंकार से विमुक्त होकर विशुद्धि के निमित्त अपने अतिचारों की आलोचना करे। अगर अतिचार दोषापत्ति नहीं है तो शिष्य को "संदिसह०" यह कहना चाहिये इस पर गुरु "पडिक्कमह" इस प्रकार कहेंगे। यदि अतिचार दोष है तो उनका परिमार्धादि प्रायश्चित्त देते हैं, तब गुरुदत्त प्रायश्चित्त को स्वीकार कर साधु

विधिपूर्वक बैठकर गुरु की तरफ ध्यान देकर यथार्थ उपयोग पूर्वक अनवस्था प्रसंग में डरते हुए प्रतिपद हृदय में संवेग–भाव को प्राप्त करते हुए दंश-मशकादि के परीषहों को न गिनते हुए पद-पद के क्रम से सामायिक आदि से लेकर प्रतिक्रमण सूत्र को पढ़ें वा सुने "तस्स धम्मस" यह पद पूरा होने के बाद खड़े होकर "अब्भुट्ठियोमि आराहणाए" इत्यादि से लेकर यावत् "वन्दामि जिने चउव्वीसं" यहाँ तक पढ़कर गुरु विधिपूर्वक बैठ जावें तब साधु वन्दन करते हैं–"इच्छामि खमासमणो अब्भुट्ठियोमि अब्भिन्तर पक्खियं खामेऊं।" गुरु कहते हैं—"अहमवि खामेमि तुब्भे" तब साधु कहते हैं–"पन्नरसहं दिवसाणं, पन्नरसहणं राईणं जिंकिंचि अपत्तियं परपत्तियं" इत्यादि, इस प्रकार से जघन्य से तीन अथवा पाँच चातुर्मासिक में और सांवत्सरिक में सात साधुओं को खमावें, उत्कृष्टतया तीनों स्थानों में सर्व साधुओं को खमाया जाता है। यह 'संबुद्धाक्षामण' रात्निकों को खमाने के लिये हैं। इसमें छोटा साधु बड़े साधु को खमाता है यह इसका तात्पर्य है बाद में कृतिकर्म करके खड़े होकर प्रत्येक क्षामणा करते हैं। इसकी यह विधि है–गुरु, अन्य वा जो मण्डली में बड़ा हो प्रथम उठकर खड़े खड़े ही अपने से छोटे को कहते हैं 'अमुक नाम श्रमण "अब्भितर पक्खियं खामेमो पन्नरसहणं दिवसाणं पन्नरसहणं राईणं इत्यादि। कनिष्ठ भी भूमितल में जानु और मस्तक लगाकर कृताञ्जलि होकर कहता है "भगवं अहमवि खामेमि तुब्भे पन्नरसहणं" इत्यादि।

यहाँ शिष्य पूछता है–गुरु उठकर क्यों खमाते हैं? गुरु कहते हैं सर्वसाधुओं को यह जताने के लिये कि "ये महात्मा अहँकार को छोड़कर द्रव्य से उठकर खमाते हैं और भाव से भी उठकर

खमते हैं।" इसके अतिरिक्त गुरु से जो जाति आदि से श्रेष्ठतर होंगे वे ऐसा विचार न करेंगे कि यह नीचे है और हम उत्तम हैं, इसलिये गुरु भी शिर नवां कर खमाते हैं। ऐसे ही गुरु से उतरते नम्बर के साधु यथारात्निकों को खमाते हैं। यावत् अन्तिम दो साधुओं को छोड़कर अन्तिम दो साधुओं में से भी उपान्त्य साधु अन्तिम साधु को खमाता है।

तब कृतिकर्म करके सब इस प्रकार कहें—"देवसियं आलोइयं पडिक्कन्ता पक्खियं पडिक्कमामो" तब गुरु कहे "सम्मं पडिक्कमह"।

उक्त कथन पाक्षिकचूर्णि का है। इस विषय में 'आवश्यक' का अभिप्राय यह है—"गुरु उट्ठेऊण जाहा रायणियाए उद्धट्ठिओ चेव खामेइ, इअरेवि महारायणियाए" सव्वेवि अवणय उत्तमंगा भणंति "देवसियं पडिक्कंत पक्खियं खामेमो पन्नरसण्हं दिवसाणं" इत्यादि। एवं सेसावि जहा रायणियाए खामेन्ति। पच्छा वन्दित्ता भणंति— "देवसियं पडिक्कन्तं पक्खियं पडिक्कमावेह"त्ति तओ गुरु गुरु-संदिट्ठो वा "पक्खियं पडिक्कमणसुत्तं कड्ढई" सेसगा जहा सत्ति काउ सग्गाइसंठिया धम्मज्झाणो वगया सुणंति। तत्थेदं सूत्रं "तित्थंकरेयतित्थे" (पाक्षिक सूत्रवृत्तितः २-३)

इसका भाव यह है कि गुरु उठकर यथा रात्निक के क्रम से खड़े २ ही खमाते हैं दूसरे भी ज्येष्ठानुक्रम से सर्व शिर नवांकर कहते हैं "दैवसिक प्रतिक्रमण कर लिया, अब पाक्षिक प्रतिक्रमण करवाइये।" बाद में गुरु अथवा गुरु संदिष्ट श्रमण पाक्षिक सूत्र पढ़ता है दूसरे यथाशक्त्यनुसार कायोत्सर्गादि-मुद्रा से संस्थित हो धर्म-ध्यान में लीन होकर सुनते हैं। वह पाक्षिक सूत्र "तीर्थंकरे इत्यादि है।

(पाक्षिकसूत्र वृत्ति से २-३)

[illegible]

स्सग्गं करेंति । तत्थ [illegible] उज्जोयगरे [illegible] । [illegible]

पन्नरसण्हं सगाणं, उज्जोयगरे [illegible], [illegible]

सगाणं उज्जोयगरे [illegible] ।" ततो [illegible]

पारित्ता चउवीसत्थयं पढंति, पच्छा [illegible] काउं

पडिलेहित्ता किइकम्मं करेंति । ततो [illegible] जाणु-

करयलुत्तमंगो समगं भणंति—"इच्छामि खमासमणो अब्भुट्ठिओमि

अब्भितरपक्खियं खामेउं' पन्नरसण्हं दिवसाणं पन्नरसण्हं राईणं-

जंकिंचि" × × ×

बाद में खड़े-खड़े पक्षप्रतिक्रमण सूत्र बोलें, अन्त में विधिपूर्वक बैठकर 'करेमि भंते सामाइयं' इत्यादि सर्व निर्दिष्ट प्रतिक्रमण सूत्र कह कर खड़ा होवे। 'तस्स धम्मस अब्भुट्ठियोमि' इत्यादि से लेकर 'वंदामि जिणे चउव्वीसं' यहाँ तक अन्तिम आलापक बोलकर "करेमि भंते सामाइयं." इत्यादि कायोत्सर्ग दण्डक पढ़कर मूलोत्तर गुणों में जो कुछ खण्डित हुआ हो उसके प्रायश्चित के निमित्त ३०० श्वासोच्छ्वास परिमाण कायोत्सर्ग कर कायोत्सर्ग में १२ उद्योतकरों का चिन्तवन करना, चातुर्मासिक प्रतिक्रमण के कायोत्सर्ग में ५०० श्वासोच्छ्वास परिमाण वाला २० उद्योतकरों का चिंतन करे।

आवश्यक कायोत्सर्ग में एक हजार आठ श्वासोच्छ्वास परिमाण वाला कायोत्सर्ग करें इस कायोत्सर्ग में ४० उद्योतकर और १ नमस्कार चिंतवन करते हैं। बाद में विधि से कायोत्सर्ग पूरा करके चतुर्विंशतिस्तव पढ़े, बाद में बैठकर मुखवस्त्रिका की और उसी से शरीर की प्रतिलेखना करके २ वन्दना दे। बाद में पृथ्वीतल पर जानु हाथ और मस्तक रखकर एक साथ बोलें "इच्छामि खमासमणो अब्भुट्ठिओमि०" हे क्षमाश्रमण मैं खड़ा हुआ हूँ। पखवाड़े के अपराधों को खमाने के लिये १५ दिन और १५ रात्रियों में जो अपराध हों उनको क्षमा कीजिये।

यहाँ आचार्य कहते हैं—"मैं भी खमाता हूं"। इसके बाद सर्व-साधु आचार्य के प्रति ४ बार क्षामणक (क्षमापनक) करके 'दैवसिक' प्रतिक्रमण करें यहाँ क्षामणक निमित्त वंदन करके कहे 'इच्छामि खमासमणो अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर देवसिय खामेउं जंकिंचि अपत्तियं" इत्यादि।

बाद में आचार्य के सामीप्य निमित्तक कृतिकर्म करें और सामायिक सूत्र का उच्चारण करके चारित्र की विशुद्धि के लिये पचास श्वासो-च्छ्वास परिमाण कायोत्सर्ग करें। नमस्कार से कायोत्सर्ग को समाप्त कर दर्शन विशुद्धि के निमित्तक नामोत्कीर्तन करें "लोगस्स उज्जोअगरे०" इत्यादि। उसके बाद दर्शन विशुद्धिनिमित्त पच्चीस श्वासोच्छ्वास परिमाण कायोत्सर्ग करें। नमस्कार से कायोत्सर्ग समाप्त कर ज्ञानविशुद्धिनिमित्तक श्रुतज्ञानस्तव पढ़ें—"पुक्खर वरदी वड्ढे" इत्यादि। उसके बाद श्रुतज्ञानविशुद्धिनिमित्तक २५ श्वासो-च्छ्वास परिमाण कायोत्सर्ग करें। बाद में नमस्कार पूर्वक

[illegible]

[illegible] पढ़ा जाता है। [illegible]

[illegible] के आगे पढ़ा जाता है। [illegible]

[illegible] पढ़ा जाता है, [illegible]

को भी [illegible] कल्प पढ़ा जाता है, पर वहां भी साधु नहीं

पढ़ता, साधु सुन सकता है, इसमें दोष नहीं, [illegible] है।

पार्श्वस्थ अथवा अन्य पढ़ने वाले की गैर हाजरी में ग्राम स्वामी अथवा श्रावकों की प्रार्थना से दिवस में भी पढ़ा जाता है, वहां यह विधि है–

पर्युषणा के पूर्व ४थी रात्रि से अपने उपाश्रय में दैवसिक प्रतिक्रमण करने के बाद काल ग्रहण करें, काल शुद्ध हो अथवा अशुद्ध तो भी स्वाध्याय प्रस्थापित करके कल्प पढ़ा जाता है। इस प्रकार चार रात्रियों में करना। पर्युषणा की रात्रि में कल्प पढ़ने के बाद सर्व साधु कल्प समाप्ति निमित्तक कायोत्सर्ग करते हैं।

"पज्जो सवणकप्पस्स समप्पावणियं करेमि काउस्सग्गं, जंखंडियं, जंविराहियं, जं नपडिपूरि श्रं (सव्वोदंडश्रो कड्ढियव्वो) जाव वोसिरामित्ति। लोगस्सुजोयगरं चिंतेऊण उच्चारित्ता पुणो लोगस्सुजोयगरंकड्ढंता सव्वेसाहश्रोनिसीयंति । जेणकड्ढिओ सो तहिं कालस्सपडिक्कमइ। ताहे वरिसा कालट्ठवणा ठविज्जइ, तं जहा-"उणोयरिया कायव्वा, निगइ-णवगपरिच्चाओ कायव्वो जम्हा निद्धोकालो वहुपाणा मेइणी, विज्जुगज्जियाईहिं मयणो दिप्पइ, पीठफलगाइ संथारगाणं, उच्चार-पासवण-खेलमत्तगाण य परिभोगो कायव्वो, निच्चं लोओ कायव्वो सेहो न दिक्खियव्वो, अभिनवो उवही न गेहयव्वो, दुगुणं वरिसो वगरणं घरेयव्वं, पुव्वगहियाणं छार उगलाईणं परिच्चाओ कायव्वो, इयरेसि धारणं कायव्वं, पुव्वावरेणं सकोस जोयणाओ परओ न गंतव्वं" इत्यादि।

जिसने सूत्र पढ़ा है वह काल प्रतिक्रमण करे फिर वर्षा काल की स्थापना करे जैसे ऊनोदरी तप करना, नव विकृतियों का त्याग करना, क्योंकि काल स्निग्ध हैं पृथ्वी जीवाकुल होती है, विद्युत्-गर्जनादि से काम दीप्त होता है पीठ, फलक, संस्तारक का उपभोग करना, उच्चार, प्रश्रवण, खेलमात्रकों का जयणा से परिभोग करना, नित्य लोच करना, शिष्य को दीक्षा नहीं देना, नवीन उपधि को न लेना, द्विगुण वर्षा के लिये उपकरण ग्रहण करना, पूर्व गृहीत रक्षा उगलकें का त्याग करना और नये ग्रहण करना, पूर्व-पश्चिम होकर सवा योजन के बाहर न जाना इत्यादि वर्षाकाल की स्थापना करना पक्ष, चतुर्मास और सांवत्सरिक पर्वों में यथाक्रम चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम तप करना, चैत्य वन्दन परिपाटी करना श्रावकों को धर्मोपदेश करना।

रात्रिक प्रतिक्रमण विधि——

प्रथम सामायिक सूत्र पढ़कर चारित्र विशुद्धि के निमित्त २५ श्वासोच्छ्वास परिमाण कायोत्सर्ग करते हैं। दर्शन विशुद्धि निमित्त ऊपर चतुर्विंशतिस्तव पढ़ते हैं और २५ श्वासोच्छ्वास परिमाण कायोत्सर्ग करते हैं। नमस्कार से कायोत्सर्ग पार कर श्रुत ज्ञान विशुद्धि निमित्त श्रुतज्ञानस्तव पढ़ते हैं, इसमें प्रादोषिक स्तुति आदि से लेकर अविच्छिन्न कायोत्सर्गपर्यन्त तक के अतिचारों का चिन्तन करते हैं और नमस्कार से कायोत्सर्ग पूरा कर सिद्धों की स्तुति कहकर पूर्वोक्त विधि से वन्दना करके आलोचना करते हैं, फिर सामायिकसूत्र पूर्वक प्रतिक्रमण करते हैं। प्रतिक्रमण सूत्र के अन्त में वन्दनपूर्वक क्षामणा करते हैं फिर कृतिकर्म करके सामायिक पूर्वक कायोत्सर्ग करते हैं। उसमें चिन्तन करते हैं—हमको गुरु ने किस काम में नियुक्त किया है उसका विचार करके तप स्वीकार करेंगे। जिस प्रकार के तप से गुरु के नियोग की हानि न हो, फिर वे तप के सम्बन्ध में विचारते हैं।

क्या छः मास पर्यन्त उपवास करें ? यह शक्य नहीं है। एक दिवस कम छःमास की तपस्या करें ? यह करने की भी शक्ति नहीं है। इस प्रकार उतरते-उतरते उन्तीस दिन कम छःमासी तप करें उसकी शक्ति के अभाव में ५ मास, ४ मास, ३ मास, फिर २ मास और १ मास क्षपण (तप) तक का चिन्तन करें। मासिक तप की शक्ति के अभाव में एक एक दिन कम करते हुए १४ दिन कम करे,

उज्जोय-पुत्ति-वंदण, आलोयण ठाणे कमेण पसुत्तं ।
अब्भुट्ठिय-खिवखामण, वंदण अल्लियावणियं ॥३६॥
चरणाइ तउस्सग्गा उज्जो अचितणं कमसो ।
सुअदेवयाइ थुईओ, पुत्तिच्चिय तत्थ नत्थि थुई ॥३७॥
सक्काइसु गायच्छिन्न उस्सग्गो, सज्झाओ, इयदिणस्स पडिक्कमणे ।
तं पुण पक्खिमाइसु, अल्लियावणियपज्जन्ते ॥३८॥
पोत्ति च्चिय वंदण-मालोयणं च, पक्खिय सुत्तं सुत्तं च वंदणयं ।
पत्तेय खामणं च, वंदणाइ सामाइयं ॥३९॥
मूलोत्तर-गुण सोही, उस्सग्गुज्जोअ, पुत्तिवंदणयं ।
पज्जंत खामणाणि य, पुणोवि पडिक्कमइ देवसियं ॥४०॥
पक्खे बारस चउमासएसु वीसं वरिसिएसु उस्सग्गो ।
चालीसा सनमुक्काराइ उज्जोया ॥४१॥

(भावदेवसूरिकृत यतिदिनचर्या पत्र ५५-५६)

भावार्थ—कुछ दिन शेष रहने पर स्थंडिल प्रतिलेखना करके गोचरचर्या का प्रतिक्रमण करे। दिन भर में जो कुछ उपयोग शून्यता से अतिचार लगे हों उनका प्रायश्चित्त करे। प्रतिक्रमण उस समय प्रारम्भ करे जबकि सूर्य का आधा बिम्ब डूब गया हो। उस समय "करेमि भंते सामाइयं" यह सूत्र पढ़े और प्रतिक्रमण की समाप्ति में दो तीन तारिकाएं आकाश में दीखती हों यह प्रतिक्रमण करने का समय है। प्रथम चैत्यवन्दन कर भगवान, आचार्य, उपाध्याय और मुनियों के क्षमाश्रमण देकर "सव्व सवि०" यह बोलकर "करेमि भंते सामाइयं" का पाठ बोलकर, दैवसिक अतिचार चिन्तन का कायोत्सर्ग करे। अतिचार चिन्तन में निम्नलिखित गाथा मन में बोल कर उसका अर्थ चिन्तन करे। शयन, आसन, आहार, पानी,

जिन चैत्य, यतिधर्म, उपाश्रय, कायिकी (लघुनीति) उच्चार, (स्थंडिल जाना, मलोत्सर्ग) समिति (पंचसमिति,), द्वादश भावनायें, तीन गुप्तियां इन सभी कार्यों में विपरीत आचरण करने पर अतिचार दोष होते हैं। इन वातों में दिन भर में जो कोई अतिचार हुआ हो उसका चिंतन करे। ऊपर चतुर्विंशतिस्तव पढ़कर मुहपत्ति प्रतिलेखना पूर्वक वन्दन करे। फिर अतिचारों की गुरु के सामने आलोचना करे। फिर बैठकर प्रतिक्रमण सूत्र पढ़े। "अब्भुट्ठियोमि०" सूत्र से क्षमापन करे, फिर वंदन, गुरु सामीप्य निमित्तक वन्दन करे। चारित्रादि तीन की शुद्धि के लिये कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग में चतुर्विंशतिस्तव का चिन्तन करे। श्रुत देवतादिकी स्तुतियाँ कहे। मुहपत्ति प्रतिलेखना पूर्वक वन्दन कर वर्धमान तीन स्तुतियां बोले। शक्रस्तव पढ़कर प्रायश्चित का कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग पार कर स्वाध्याय करे। इस प्रकार दैवसिक प्रतिक्रमण की विधि करना चाहिये।

उपर्युक्त विधि के उपरान्त पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणों में गुरु सामीप्य पर्यन्त विधि करके मुहपत्ति प्रतिलेखना कर वन्दनक देकर आलोचना करें। पाक्षिकसूत्र पढ़े। प्रत्येक खामणा करे फिर वन्दनापूर्वक सामायिक का पाठ बोलकर मूल तथा उत्तर गुणों की शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग पूरा कर ऊपर चतुर्विंशति स्तव पढ़े। बाद में मुहपत्ति प्रतिलेखना कर वन्दनक दे और पर्यन्त क्षामणा करे। उसके बाद शेष दैवसिक प्रतिक्रमण की विधि करे। पाक्षिक प्रतिक्रमण में बारह, चातुर्मासिक में बीस और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में नमस्कार सहित चालीस उद्योतकरों का कायोत्सर्ग करे। (भावदेवसूरिकृत यतिदिनचर्या पत्र ५५-५६)

परिकड्ढिऊण पच्छा, किइकम्मं काउ नवरि खामंति।
आयरियाइ सव्वे, भावेण सुए तहा भणिअं ॥४६८॥
आयरिय-उवज्झाए, सीसे साहम्मि ए कुलगणे अ.।
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि।४६९॥
सव्वस्स समण संघस्स, भगवओ अंजलिं सिरे काउं।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं प ॥४७०॥
सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्मनिहिय निअचित्तो।
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयंपि ।।४७१।

× × ×

खामित्तु तओ एवं, करिंति सव्वे वि नवरमणवज्जं।
रे सिमि दुरालोइय-दुप्पडिकंतस्स उस्सग्गं ॥४७८॥

× × ×

सामाइय पुव्वगं तं, करिंति चारित्त सोहण निमित्तं।
पिय धम्मवज्जभीरु, पण्णासुस्सासगपमाणं ॥४८३॥
ऊसारिऊण विहिणा, सुद्धचरित्ता थयं पकढ्ढित्ता।
कढ्ढति तओ चेइय-वंदणदंडं तउस्सग्गं ॥४८४॥
दंसणसुद्धिनिमित्तं, करेंति पणवीसगं पमाणेणं।
उस्सारिऊण विहिणा, कढ्ढन्ति सुअत्थवं ताहे ॥४८५॥
सुअनाणस्सुस्सग्गं, करिंति पणवीसगप्पमाणेणं।
सुत्तइयारविसोहण-निमित्तमह पारिउं विहिणा ॥४८६॥

× × ×

सुद्धसयलाइयारा, सिद्धाण थयं पढंति तो पच्छा।
पुव्वभणिएण विहिणा, किइकम्मं दिति गुरुणो उ ॥४८८॥
सुकयं आणत्तिमिव, लोए काऊण सुकयकिइकम्मा।
वढ्ढतिओ थुईओ, गुरुथुइगहणे कए तिण्णि ॥४८७॥

श्री हरिभद्रीय [illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥
सेसा उ जहा [illegible], आपुच्छिऊण [illegible] ।
सुत्तत्थसरणहेउं, [illegible] ॥[illegible]॥

एत्थ उ [illegible] सामाइया, [illegible] गुरुणो [illegible] ।
अइगारं [illegible] ॥४४८॥
आयरिओ सामइगं कड्ढइ जाहे तहट्ठिया तेऽवि ।
ताहे अणु पेहंती, गुरुणा सह पच्छ देवसियं ॥४४९॥
जा देवसिअं दुगुणं, चिंतेइ गुरु अहिंडिओ चिट्ठं ।
बहुवावारा इअरे एग गुणं ताव चिंतिंति ॥४५०॥

उस्सग्ग समत्तीए, नवकारंण गह ते उ पारिंति ।
चउवीसगं ति दंड, पच्छा कड्ढंति उवउत्ता ॥४५४॥
संडंसं पडिलेहिअ, उवविसिअ तओ णवर गुरुणोत्ति ।
पडिलेहिउं पमज्जिय, कायं सव्वेवि उवउत्ता ॥४५५॥
किइकम्मं वंदणगं, परेण विणएण तो पउंजंति ।
सव्वप्पगारसुद्धं, जह भणियं वीअरागेहिं ॥४५६॥

वंदित्तु तओ पच्छा, अद्धावणया जह क्कमेणं तु ।
उभयकर–धरि अलिगा, ते आलोएति उवउत्ता ॥४५८॥
तस्स य पायच्छित्तं जं मग्गविउ गुरु उवइसंति ।
तं तह अणु चरियव्वं, अणवत्थ पसंग भीएणं ॥४६५॥
आलोइ ऊण दोसे, गुरुणो पडिवन्नपायच्छित्ताओ ।
सामाइय पुव्वयं ते, कड्ढंति तओ पडिक्कमणं ॥४६६॥

तइए निसाइयारं, चिंतिअ उकण पारऊण विहिणाउ।
सिद्धथयं पढित्ता, पडिक्कमंते जहा पुव्वि ॥५००॥

× × ×

खामित्तु करिंति तओ, सामाइयपुव्वगं तु उस्सग्गं।
तत्थ य चिंतिति इमं, कत्थनिउत्ता वयं गुरुणा ॥५०२॥
जह तस्स न होइ च्चिय, हाणी कज्जस्स तह जयंतेवं।
छम्मासाइकमेणं, जा सचक असढभावाणं ॥५०३॥
तं हियए काऊणं, किइकम्मं काउ गुरुसमीवंमि।
गिण्हंति तओ तं चिय, समगं नवकार माईअ ॥५०४॥

(पंचवस्तुक. पत्र ७४ से ८२ पर्यन्त)

दैवसिक प्रतिक्रमण विधि—

भावार्थ—यदि निर्व्याघात प्रतिक्रमण हो तो सब साथ में आवश्यक करते हैं और श्राद्ध-धर्मकथादि व्याघात हो तो शेष साधु स्थान पर जा बैठते हैं और बाद में गुरु भी आकर अपने स्थान पर बैठते हैं। व्याघात अवस्था में शेष सभी साधु गुरु को पूछकर स्वस्थान पर बैठ जाते हैं और सूत्रार्थों का स्मरण करते हैं। जब आचार्य आते हैं तब दैवसिक प्रतिक्रमण शुरु करते हैं। यहां "करेमि भंते" इत्यादि सामायिक सूत्र कथन पूर्वक आचार्य सूत्रोच्चारण करें तब शेष साधु भी अपने २ स्थान पर रहे हुए सूत्र का मन में चिन्तन करने के लिए कायोत्सर्ग करें और गुरु उसमें अपने दिन भर की प्रवृत्तियों का दो बार चिन्तन करेंगे, तब बहुप्रवृत्ति वाले दूसरे साधु कायोत्सर्ग में अपनी प्रवृत्तियों का एक ही बार चिंतन कर सकेंगे। कायोत्सर्ग की समाप्ति में गुरु के बाद नमस्कारपूर्वक सब कायोत्सर्ग पारें। ऊपर चतुर्विंशतिस्तव दण्डक का उपयोगपूर्वक पाठ बोलें, फिर सण्डासक प्रतिलेखना करें, शरीर का प्रमार्जन करें सब उपयोग

सामइयं कड्ढित्ता, [illegible] ।
पणगीमुग्गाणं मिअ, [illegible] ॥४६३॥
उस्सारिऊण विहिणा, सुद्ध[illegible] [illegible] कड्ढित्ता ।
दंसणसुद्धि निमित्तं, करिंति पणुवीस उस्सासं ॥४६५॥
ऊसारिऊण विहिणा, कड्ढिंति सुअत्थयं तओ पच्छा ।
काउस्सग्गमणियर्य, एहं करेंती उ उवउत्ता ॥४६६॥
पाउसिअ थुइमाई, अहिगयउस्सग्गचिट्ठपज्जंते ।
चिंतिति तत्थसम्मं, अइयारे राइये सव्वे ॥४६७॥
× × ×
तइए निसाइआरं, चिंतइ चरिमे अ किं तवं काहं ।
छम्मासा एकदिणाइ, हाणि जा पोरिसि नमो वा ॥४६८॥

तइए निसाइयारं, चिंतिअं उकण पारऊण विहिणाउ।
सिद्धथयं पढित्ता, पडिक्कमंते जहा पुव्विं ॥५००॥
× × ×
खामित्तु करिति तओ, सामाइयपुव्वगं तु उस्सग्गं।
तत्थ य चिंतिति इमं, कत्थनिउत्ता वयं गुरुणा ॥५०२॥
जह तस्स न होइ च्चिय, हाणी कज्जस्स तह जयंतेवं।
छम्मासाइकमेणं, जा सक्क असढभावाणं ॥५०३॥
तं हियए काऊणं, किइकम्मं काउ गुरुसमीवंमि।
गिण्हंति तओ तं चिय, समगं नवकार माईअ ॥५०४॥

(पंचवस्तुक. पत्र ७४ से ८२ पर्यन्त)

दैवसिक प्रतिक्रमण विधि—

भावार्थ—यदि निर्व्याघात प्रतिक्रमण हो तो सब साथ में आवश्यक करते हैं और श्राद्ध-धर्मकथादि व्याघात हो तो शेष साधु स्थान पर जा बैठते हैं और बाद में गुरु भी आकर अपने स्थान पर बैठते हैं। व्याघात अवस्था में शेष सभी साधु गुरु को पूछकर स्वस्थान पर बैठ जाते हैं और सूत्रार्थो का स्मरण करते हैं। जब आचार्य आते हैं तब दैवसिक प्रतिक्रमण शुरु करते हैं। यहां "करेमि भंते" इत्यादि सामायिक सूत्र कथन पूर्वक आचार्य सूत्रोच्चारण करें तब शेष साधु भी अपने २ स्थान पर रहे हुए सूत्र का मन में चिन्तन करने के लिए कायोत्सर्ग करें और गुरु उसमें अपने दिन भर की प्रवृत्तियों का दो बार चिंतन करेंगे, तब बहुप्रवृत्ति वाले दूसरे साधु कायोत्सर्ग में अपनी प्रवृत्तियों का एक ही बार चिंतन कर सकेंगे। कायोत्सर्ग की समाप्ति में गुरु के बाद नमस्कारपूर्वक सब कायोत्सर्ग पारें। ऊपर चतुर्विंशतिस्तव दंडक का उपयोगपूर्वक पाठ बोले, फिर सण्डासक प्रतिलेखना करें शरीर का प्रमार्जन करें सब उपयोग

विनयपूर्वक कृतकर्म करें। वन्दनक सर्व प्रकार से शुद्ध शास्त्रानुसार करें। वन्दन करके फिर अर्धावनत (कुछ झुके हुए) क्रम से दोनों हाथों में रजोहरण और मुहपत्ति लेकर कायोत्सर्ग में चिंतित अति-चारों को गुरु के सामने प्रकट करे और उनको मार्ग के जानने वाले गुरु प्रायश्चित का उपदेश करे और जैसे आलोचना का प्रायश्चित हो वैसे ही अनवस्था को दूर रखते हुए साधु अनुसरण करे। गुरु के सामने दोषों की आलोचना कर और गुरु का दिया हुआ प्रायश्चित्त स्वीकार कर फिर सामायिकपूर्वक प्रतिक्रमण सूत्र पढ़े। प्रतिक्रमण सूत्र पूरा पढ़कर कृतिकर्म (वन्दनक) करे। बाद में गुरु आदि को खमावे। उसके बाद आचार्यादि सर्व को भाव से खमावे। जैसे सूत्र में कहा है—आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल और गण में जिस किसी को मैंने कषाय उत्पन्न किया हो उन सर्व को मै मन वचन काया से खमाता हूं। सर्वश्रमण संघ को सिर पर हाथ जोड़कर अपनी तरफ़ के अपराधों की क्षमा मांगता हूं और जिस किसी ने मेरा अविनयादि किया हो उनको भी मैं क्षमता हूँ। भाव से धर्म में चित्त लगाकर सर्व जीवराशि को अपने अपराधों की क्ष...

है और पच्चीस श्वासोच्छ्वास परिमित होता है। कायोत्सर्ग पूरा करके विधिपूर्वक ऊपर श्रुतस्तव पाठ बोलते हैं और श्रुतज्ञान का कायोत्सर्ग करते हैं। कायोत्सर्ग २५ श्वासोच्छ्वास परिमित होता है। श्रुतज्ञान के विशुद्धि निमित्तक २५ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग विधिपूर्वक समाप्त करके जिनके सकल अतिचार शुद्ध हुए हैं ऐसे प्रतिक्रमण करने वाले अन्त में सिद्धों का स्तव पढ़ते हैं, बाद में पूर्वकथनानुसार विधि से गुरु को कृतिकर्म करते हैं। जिस प्रकार लोक में राजाज्ञा का पालन करके सेवक फिर उनके पास आकर हाजिर होते हैं, उसी प्रकार प्रतिक्रमण करने वाले श्रमण कृतिकम करके गुरु के समीप उपस्थित होते हैं और वर्धमान स्तुतियां बोलते हैं। प्रथम गुरु एक स्तुति बोल जायें, उसके बाद शिष्य भी ३ स्तुतियां बोलते हैं। स्तुतिमंगल गुरु द्वारा उच्चारित करने के बाद शेष साधु भी स्तुति बोलते हैं। बाद में थोड़े समय तक शिष्य गुरु के चरणों के सामने हाजिर खड़े रहते हैं। इसलिए कि शायद कुछ भूल हुई हो तो गुरु याद करायें, एक प्रकार से इस रीति से विनय का भी पालन होता है। फिर आचरणा से श्रुतदेवता आदि का कायोत्सर्ग होता है. उपर्युक्त गाथा के अर्धभाग की टीका में आचार्य लिखते हैं कि आदि शब्द से क्षेत्र और भवनदेवता का ग्रहण करना चाहिये। चातुर्मासिक और वार्षिक प्रतिक्रमणों में क्षेत्रदेवता का कायोत्सर्ग होता है और पाक्षिक प्रतिक्रमण में भवन-देवी का कायोत्सर्ग करते हैं।

कोई आचार्य चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में भी भवन देवता का कायोत्सर्ग करने का कहते हैं। दैवसिक प्रति- क्रमण के बाद प्रादोषिक काल ग्रहण आदि सब बातें विशेष सूत्र से

जान लेना चाहिए। अब प्राभातिक प्रतिक्रमण की विधि कहते हैं।

रात्रिक प्रतिक्रमण विधि—

सामायिक सूत्र पढ़कर चारित्र शुद्धि के लिए प्रथम कायोत्सर्ग २५ श्वासोच्छ्वास परिमित करते हैं। कायोत्सर्ग पार कर शुद्ध चारित्रवन्त ऊपर चतुर्विंशतिस्तव पढ़कर दर्शनशुद्धि के निमित्त दूसरा २५ श्वासोच्छ्वास परिमित कायोत्सर्ग करते हैं। विधि से कायोत्सर्ग पारकर बाद में श्रुतस्तव पढ़ते हैं और उपयोगपूर्वक अनियत परिमाण कायोत्सर्ग करते हैं। प्रादोषिक प्रतिक्रमण में पढ़ी हुई अन्तिम स्तुति से लेकर अधिकृत कायोत्सर्ग पर्यन्त की तमाम चेष्टाओं का इस अनियत परिमाण वाले तीसरे कायोत्सर्ग में रात्रिक अतिचारों का चिन्तन होता है। अन्तिम कायोत्सर्ग में कर्त्तव्य तप का चिन्तन करते हैं। आज मैं क्या तप करूँ? छः मासिक तप कर सकता हूँ? नहीं, एक दिन कम इत्यादि कर सकता हूँ? नहीं। इस प्रकार एक २ दिन घटाते हुए यावत् पौरुषी अथवा नमस्कार सहित जो प्रत्याख्यान करना हो वह मन में धारण करके कायोत्सर्ग विधिपूर्वक पारे। ऊपर सिद्धस्तव पढ़कर पूर्ववत् आगे प्रतिक्रमण करे। क्षामणक करके सामायिकपूर्वक कायोत्सर्ग करे और उसमें तप चिन्तन करते हुए अपनी स्थिति का विचार करे। गुरु ने हमको किस काम के लिये नियुक्त किया है - यह सोचकर गुरु-निर्दिष्ट कार्य की हानि न हो वैसा षाण्मासिक आदि क्रम से उतरते हुए जो तप शक्य हो वहाँ तक नीचे उतरकर हृदय में धारण करले, फिर कृतिकर्म करके गुरु के पास अपने २ चिन्तित तप का प्रत्याख्यान करे।

(पंचवस्तुक पत्र ७२-८२ पर्यंत)

तत्थ य धरेइ हिअए, जा य ताणं दिणकए अईआरे।
पारेत्तु नमुक्कारेण पढइ चउवीसगयथदंई ॥२२॥

सुत्तत्थ तत्तदिट्ठ १, दंसणमोहत्तिगं च ४ रागतिगं ७।
देवाईतत्ततिगं १०, तह य अदेवाइ भत्तितिगं १३ ॥२३॥

नाणाइतिगं १६ तह तव्विराहणा तिन्नि गुत्ति २२ दंडतिगं २५।
इय मुहणंतगपडिलेहणाउ कमसो विचिंतिज्जा ॥२४॥

हासो रई अ अरइ ३, भय सोग दुगं छया य वज्जिज्जा ६।
भुअजुअल पेहंतो, सीसं अपसत्थ लेस तिगं ६ ॥२५॥

गारवतिगं च १२ वयणे उरि सल्लतिगं १५ कसाय चउ पट्ठे १६।
पय जुगि छज्जीववह २५, तणुपेहाये विहाणमिणं ॥२६॥

जइवि पडिलेहणाए, हेऊ जिअ रक्खणं जिणाणाय।
तहवि इमं मणमक्कड, नियंतणत्थं मुणी विंति ॥२७॥

उट्ठिअ विऊ रा विणयं, विहिणा गुरुणो करेइ किइकम्मं।
बत्तीस दोसरहिअं, पणवीसावस्सयविसुद्धं ॥२८॥

यद्ध १ पविद्ध २ मणाढिअ ३, परिंपिंडिअ ४ मंकुसं ५
भमुवत्तं ६। कच्छवरिंगिअ ७ टोलगइ ८ ढड्ढरं ६।
वेइआवद्धं १० ॥२६॥

मणदुट्ठ ११ रुद्ध १२ तज्जिअ १३ सढ्ढं १४ हीलिअ १५
तेणिअं च १६।

पडिणीअ १७ दिट्ठमदिट्ठं १८ सिंग १६ कर २० मोअण
२१ मूण २२ मूअ च २३ ॥३०॥

भय २४ मित्ती २५ गारव २६ कारणेहिं २७ पलिउंचिअं २८
भयंते च २६। आलिद्धमणालिद्धं ३० चूलिअ ३१ चुडलित्ति ३२
बत्तीसा ॥३१॥

सामान्य प्रतिक्रमण विधि—

अर्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य विषयक आचरणा करना उसका नाम आचार है। यह आचार इस प्रकार पांच प्रकार का है ॥१॥

उक्त पंचाचार की विशुद्धि के लिये साधु अथवा श्रावक प्रतिक्रमण करता है। गुरु की विद्यमानता में गुरु के साथ और गुरु के हाजिर न होने पर अकेला भी श्रावक प्रतिक्रमण करे ॥२॥

यहां सामायिक से चारित्र की विशुद्धि की जाती है, क्यों कि सामायिक में सावद्य योगों का त्याग और निरवद्य योगों का सेवन होता है ॥३॥

चतुर्विंशतिस्तव से दर्शनाचार की विशुद्धि की जाती है, क्योंकि चतुर्विंशतिस्तव में जिन वरेन्द्रों का अत्यद्भुत गुण-कीर्तन किया जाता है ॥४॥

वंदन के विधि पूर्वक करने से ज्ञानादि गुणों की और ज्ञानादि गुण-धारकों की प्रतिपत्ति होती है और ऐसा होने से ज्ञानादि गुणों की वृद्धि होती है ॥५॥

ज्ञानादि गुणों की प्राप्ति के लिये किये जाते प्रयास में होने वाली स्खलनाओं का सही रूप से किये जाते प्रतिक्रमण से उक्त गुणों की शुद्धि होती है ॥६॥

चारित्र आदि में लगने वाले अतिचारों की प्रायश्चित्त के रूप में कायोत्सर्ग करने से शुद्धि होती है ॥७॥

गुणधारण रूप प्रत्याख्यान से अतिचारों की शुद्धि होती है और उक्त सर्व उपायों से वीर्याचार की शुद्धि होती है। विद्याएँ विनया-धीन होती हैं। विनय से पढ़ी हुई विद्या ही इस लोक और परलोक में फल देती है, विनयहीन को विद्या फल नहीं देती जैसे जलहीन सस्य फल नहीं देते ॥८॥

जिनेश्वरों की भक्ति से, पूर्व संचित कर्मों का नाश होता है और विद्याचार्य को किये हुए नमस्कार से विद्या और मंत्र सिद्ध होते हैं ॥१०॥

चैत्यवन्दन करके चार क्षमाश्रमण देकर भूमि पर सिर रखकर सकलातिचारों का मिथ्या दुष्कृत करे ॥११॥

दर्शन, ज्ञान, प्रत्येक संपूर्ण फल नहीं देते, परन्तु चारित्र के मिलने से ही विशेष फल देते हैं। इसलिये तीनों गुणों में चारित्र में ही विशिष्ट गुण होता है ॥१२॥

सामायिकपूर्वक "इच्छामि ठामि काउसग्गं" इत्यादि सूत्र पढ़कर भुजाएँ नीचे लम्बित करके कुहुनियों से अधोवस्त्र को पकड़कर कायोत्सर्ग करे ॥१३॥

उस कायोत्सर्ग में क्रमशः दिनभर के अतिचारों को हृदय में धारण करके नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्ग पारकर चतुर्विंशतिस्तव दण्डक को पढ़े ॥२२॥

सूत्र, अर्थ, तत्त्व पर श्रद्धा करना, दर्शनमोह आदि त्रिक रागत्रिक ७, और देवादि तत्वत्रिक १० तथा अदेवादि भक्ति १३, ज्ञानादित्रिक १६, तथा ज्ञानादि विराधनात्रिक १६, गुप्ति २२, दंडत्रिक २५ इस प्रकार मुखवस्त्र की प्रतिलेखना में क्रम चिन्तन करे ॥२३-२४॥

हास्य, रति, अरतिवर्जन ३, भय, शोक, दुगुञ्छा वर्जन उपर्युक्त तीन-तीन दोष भुज युगल की प्रतिलेखना करता हु बोले और शीर्ष की प्रतिलेखना करता हुआ अप्रशस्त तीन लेश्या का त्याग करे ॥२५॥

मुख की प्रतिलेखना करता हुआ गौरव त्रिक का त्याग १२ करे और हृदय की प्रतिलेखना करता हुआ शल्यत्रिक १५ का त्याग करे और पीठ की प्रतिलेखना करता हुआ ४ कषायों का त्याग करे १६। दो चरणों की प्रतिलेखना करता हुआ छः जीव निकाय की रक्षा करे २५ इस प्रकार शरीर प्रतिलेखना के समय बोलने के २५ बोलों का विधान हुआ ॥२६॥

यद्यपि प्रतिलेखना करने का कारण जीव-रक्षा और जिन-आज्ञा है तथापि मन-मर्कट नियंत्रित करने के लिए मुनि लोग उक्त प्रकार से बोल कहते हैं। उठकर विद्वान् विधिपूर्वक गुरु का विनय करते हैं और बत्तीस दोष रहित और २५ आवश्यक विशुद्ध गुरु-वन्दन करते हैं ॥२७-२८॥

पापी मनुष्य भी गुरु के पास आलोचना और निन्दा करके एकदम कर्मों के भार से हलका हो जाता है, जैसे ऊपर का बोझा उतार कर भारवाहक हलका होता है ॥७॥

बैठकर सामायिक आदि प्रयत्न पूर्वक सूत्र पढकर अब्भुट्ठिओमि०" इत्यादि बोलता हुआ दोनों प्रकार से खड़ा हुआ क्षमापन सूत्र बोले ॥३८॥

प्रतिक्रमण करते समय, स्वाध्याय करते समय, कायोत्सर्ग करते वक्त, अपराध गुरु के आगे प्रकट करते समय, आलोचना करते समय, प्रत्याख्यान करते समय और अनशन करते वक्त वन्दन करना चाहिए ॥३९॥

पञ्चकादि साधुओं की संख्या हो तब तीनों को खमाना चाहिए कृतिकर्म, वन्दन करके विद्वान् श्रद्धावान् तीन गाथा पढे ॥४०॥

इस प्रकार सामायिक आदि सूत्रउच्चारण करके कायोत्सर्ग में रहे हुए चारित्राचार के अतिचारों की शुद्धि के लिये दो चतुर्विंशति-स्तवों का चिन्तन करे ॥४१॥

प्रथम कायोत्सर्ग में प्रतिक्रमण करता हुआ सामायिक न करके दूसरा और तीसरा कायोत्सर्ग कैसे करता है? जिसकी आत्मा समभाव में रही हुई है वह कायोत्सर्ग करके फिर प्रतिक्रमण करता है, इसी प्रकार समभाव में रहा हुआ तीसरा भी कायोत्सर्ग करता है ॥४२-४३॥

स्वाध्याय, ध्यान, तप, औषध, उपदेश, स्तुतिप्रदान और सद्गुण-कीर्तन, इतने कार्यों में पुनरुक्त दोष नहीं होते ॥४४॥ विधि से कायोत्सर्ग पार कर सम्यक्त्व शुद्धि के हेतु ऊपर चतुर्विंशतिस्तव पढ कर और "सव्वलोए अरिहंत" इत्यादि चैत्याराधनार्थ कायोत्सर्ग-करे उसमें लोगस्स का चिंतनकर शुद्ध हुआ है सम्यक्त्व जिसका ऐसा पुक्खर-वरदी-वड्ढे यह कहें। श्रुत आराधना के निमित्त सूत्र बोले, फिर २५ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करें और विधि-पूर्वक

जिन धर्म [illegible] और [illegible] [illegible]

कहा है, इसमें मनुष्य [illegible] के और [illegible] आनुषंगिक होते

हैं, जैसे कृषि के साथ पलाल (घास) ॥५०॥

वृक्ष के मूल से स्कन्द की उत्पत्ति होती है, बाद स्कंद से शाखा

उत्पन्न होती हैं। शाखा प्रशाखाओं से पत्र उत्पन्न होते हैं और पत्रों

के बाद पुष्पफल तथा रस की उत्पत्ति होती है ॥५१॥

अथ श्रुतज्ञान की वृद्धि के हेतु श्रुतदेवी का कायोत्सर्ग करते हैं

कायोत्सर्ग में १ नमस्कार का चिन्तन करते हैं, बाद श्रुतदेवी

स्तुति बोली अथवा सुनी जाती है ॥५२॥

इसी प्रकार क्षेत्रदेवी का भी कायोत्सर्ग करते हैं और उस

स्तुति बोलते अथवा सुनते हैं। ऊपर पंच मंगल नमस्कार पढ़

सण्डासक प्रमार्जन करके बैठते हैं ॥५३॥ पूर्वोक्त विधि से मु

वस्त्रिका की प्रतिलेखना करके गुरु को वन्दन कर "इच्छामो अणुस

यह बोलकर जानुओं के बल बैठे ॥५४॥

राजा के नौकर राजाज्ञा का प्रतिपालन करके आकर राजा

राजाज्ञा के प्रतिपालन की सूचना करते हैं उसी प्रकार साधु

कर्म करके कुछ मिनटों तक बैठते हैं, वर्धमान स्तुति बोली

है और गुरु के १ स्तुति कहने पर शेष सभी साधु तीन स्तुतियाँ बोलते हैं ॥५५॥

वर्धमान अक्षर और वर्धमान स्वर से स्तुतियां बोलते हैं। बाद शक्रस्तव पढ़कर दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करते हैं ॥५६॥

हिंसा, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन और परिग्रह त्याग के व्रतों में स्वप्न आदि में दोष लगा हो तो एक सौ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करना ॥५७॥

प्रथम पोरसी में स्वाध्याय करे, दूसरी में ध्यान करे, तीसरी में निद्रा का त्याग करे और चतुर्थ पोरसी में फिर ध्यान करे ॥५८॥ चतुर्दश पूर्वधरों के लिये उत्कृष्ट स्वाध्याय द्वादशांगी का पढ़ना होता है इसके नीचे कम होता हुआ कम से कम नमस्कार पढ़ने तक का स्वाध्याय होता है ॥५९॥

बारह प्रकार का तप जो आभ्यन्तर और बाह्य तपों के भेद से कुशल पुरुषों ने बताया है, वह भी स्वाध्याय रूप तप की बराबरी नहीं करेगा ॥६०॥

इस प्रकार दैवसिक प्रतिक्रमण कहा है, इसी प्रकार रात्रिक प्रतिक्रमण भी किया जाता है। इसमें जो विशेषता है वह नीचे बताई जाती है, रात्रिक प्रतिक्रमण में सामूहिक रात्रिक अतिचारों का मिच्छामि दुष्कृत करके शक्रस्तव पढ़ा जाता है ॥६१॥

फिर उठकर विधि से कायोत्सर्ग किया जाता है उसमें चतुर्विंशति स्तव की चिन्तना होती है, दूसरा दर्शन शुद्धि के लिये कायोत्सर्ग किया जाता है और इसमें भी चतुर्विंशतिस्तव का ही चिन्तवन होता हैं ॥६२॥

भगवान् ऋषभदेव १ वर्ष पर्यन्त उपवासी रहे, भगवान् महावीर छः मास तक तपस्या में रहे और विहार किया इन दो तीर्थंकरों की तपस्या के उदाहरण से साधुओं को तप करने का उद्यम करना चाहिये ॥६६॥

तप चिन्तवन के कायोत्सर्ग में यह सोचे कि मेरे तप करने से संयम के योगों में हानि न हो उस प्रकार का तप करूँ, छमास से लगाकर एक-एक मास एक-एक दिन नीचे उतरता हुआ ५ मास ४-३, दो मास तक नीचे उतरे। मास में भी दिन घटाता हुआ तेरह दिन कम करे फिर नीचे ३४ भक्त ३२ भक्त इस प्रकार दो-दो भक्तों की हानि करता हुआ चतुर्थ भक्त तक नीचे उतरे। चतुर्थ भक्त के नीचे आयम्बिल यावत् पोरुषी और उसके नीचे नमुक्कार पर्यंत उतरे ॥६७-६८-६९॥

नीचे उतरकर जो तप अपने लिये करना शक्य समझे उसको मन में धारण करके कायोत्सर्ग पार कर मुहपत्ति प्रतिलेखना करे

और दो वन्दनक देकर अशठ भाव से मनः चिन्तित तप का विधिपूर्वक प्रत्याख्यान करे ।।७०।।

फिर "इच्छामो अणुसट्ठिं" यह वाक्य पढ़कर बैठकर तीन स्तुतियां पढ़े, प्रभात समय में स्तुति पाठ मन्द स्वर से बोले, ऊपर शक्रस्तव पढ़कर चैत्यवन्दन करे ।।६१।।

कृत्य, अकृत्य आदि विनय के हेतु जो गुरु बतावे उसके स्वीकार के निमित्त 'बहुवेलं संदिवसामि" यह बोलकर रात्रिक प्रतिक्रमण पूरा करे ।।७२।।

अब पाक्षिक प्रतिक्रमण चतुर्दशी के दिन किया जाता है। पाक्षिक दैवसिक प्रतिक्रमण सूत्रपाठ पर्यन्त हमेशा की तरह दैवसिक प्रति-क्रमण करके फिर इस प्रकार क्रिया करे ।।७३।।

पाक्षिक मुहपत्ति की प्रतिलेखना करके दो वन्दनक दे, फिर संबुद्ध-क्षामणक करके पाक्षिक आलोचना करे। ऊपर दो वंदनक देकर प्रत्येक अब्भुट्ठियो खामे-क्षामणक करके दो वन्दनक करे फिर पाक्षिकसूत्र पढ़े ।।७४।।

उसके बाद पाक्षिक वंदित्ता-सूत्र पढ़े और "अब्भुटिठयो खामे" खामकर पाक्षिक कायोत्सर्ग करे, कायोत्सर्ग के अन्त में मुहपत्ति प्रतिलेखनापूर्वक दो वंदनक दें, फिर समाप्ति का अब्भुट्ठिया खमावे बाद में चार स्तोभ वन्दनक दे ।।७५।।

स्तोभ वन्दन करके फिर पूर्ववत् अवशिष्ट दैवसिक प्रतिक्रमण करे शय्यादेवी का कायोत्सर्ग करे और स्तव के स्थान में अजित-शांतिस्तव पढ़े, इसी प्रकार चातुर्मासिक और वार्षिक प्रतिक्रमण में भी यथाक्रम विधि समझना चाहिये। पक्ष, चतुर्मास और वार्षिक प्रतिक्रमणों में उन उन प्रतिक्रमणों के नाम बोलने चाहिए ।।७४-७७।।

तीसरा परिच्छेद

प्रतिक्रमण गर्भ हेतु ग्रन्थोक्त प्रतिक्रमण विधि--

ततो विधिनोपविश्य एकाग्रमनसा सर्वं पंच परमेष्ठिनमस्कार पूर्वकं कर्म कर्त्तव्यमित्यादौ स पठ्यते × सामायिक सूत्रं करेमि भंते × चत्तारि मंगलं × इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे देवसिओ अइयारो कओ × ईर्यापथिकी × मूल साधु प्रतिक्रमणसूत्रं × जाव तस्स धम्मस्सत्ति × श्राद्धस्तु आचरणादिना नमस्कारं, करेमि भंते सामाइयं, इच्छामि पडिक्कमिउं इति सूत्रपूर्वकं श्राद्ध प्रतिक्रमणसूत्रं कथयति × उत्थाय अब्भुट्ठिओमि' इत्यादि सूत्रं प्रान्ते यावत् पठति × वदनकं × पचप्रभृतिषु साधुषु सत्स त्रीन् श्री गुरुप्रभृतीन् क्षामयेत् × वदनकदान पूर्वं अवग्रहाद्वर्हिनिःसृत्य आयरिय-उवज्झाय' सूत्रं पठति × करेमि भंते सामाइयमित्यादिसूत्रत्रयं पठति । चतुर्विंशतिस्तवद्वयं चिन्तनं × चतुर्विंशतिस्तवभणनं, सव्वलोए अरिहंत चेइयाणमित्यादि सूत्र च पठित्वा तदर्थमेव कायोत्सर्गः एक चतुर्विंशतिस्तव चिन्तनरूपः। पारयित्वा "पुक्खर वरदी वड्ढे" इत्यादि सूत्रं सु अस्स भगवओ करेमि' काउसग्गमित्यादि पठित्वा एक चतुर्विंशतिस्तव चिन्तन रूपं कायोत्सर्गं कुर्यात् × पारयित्वा × सिद्धाणं बुद्धाणमिति × चतुर्विंशतिस्तव त्रय चिन्तनरूपः कायोत्सर्गः। सिद्धस्मरणं, वीरवन्दनं

पौरुषीं यावत् संपूर्णा स्यात् ॥ ४ ॥ संप्रति तु श्रीतपागच्छसामाचारीतो दैवसिक प्रतिक्रमणानंतरं जघन्यतोऽपि पंचशती गुणनीया, पाश्चात्यायां निशि च त्रिशती । इति दैवसिक प्रतिक्रमण विधिरुक्ता ।

(प्रतिक्रमण गर्भहेतुः ५-६-१०)

अर्थ—बाद में विधिपूर्वक बैठकर एकाग्र मन से "सर्व कर्तव्य परमेष्ठिनमस्कारपूर्वक करना चाहिये ।" इसलिये सर्वप्रथम नमस्कार पढ़ना फिर सामायिक सूत्र "करेमि भंते०" इत्यादि पढ़े, बाद में "चत्तारिमंगलं" इत्यादि पढ़े, फिर "इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे देवसिओ अइयारो कओ०" इत्यादि पढ़कर इरियापथिकी सूत्र पढ़े, बाद में साधु प्रतिक्रमण सूत्र बोले, 'जाव तस्स धम्मस्स०" यहां तक श्रावक आचरणादि से नमस्कार "करेमि भंते सामाइयं०, इच्छामि पडिक्कमिउं०" इस प्रकार पूर्वपूर्वक श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र पढ़े, खड़ा होकर "अब्भुट्ठिओमि०" इत्यादि सूत्र पाठ बोले। पांच आदि साधुओं में तीनों को खमावे। फिर वन्दनकदानपूर्वक अवग्रह से बाहर निकलकर "आयरिय-उवज्झाए०" सूत्र पढ़े, ऊपर "करेमि भंते०" इत्यादि सामायिक सूत्र पढ़े और कायोत्सर्ग में दो उद्योतकरों का चिंतन करे। कायोत्सर्ग पारकर ऊपर चतुर्विंशतिस्तव पढ़े। 'सव्वलोए अरिहन्त चेइयाणं०" इत्यादि सूत्र पढ़कर अरिहंतचैत्यार्थ कायोत्सर्ग करे और एक चतुर्विंशतिस्तव का चिन्तन करे। कायोत्सर्ग पार कर "पुक्खरवरदी वड्ढे०" इत्यादि सूत्र पढ़कर "सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं०" इत्यादि पढ़के एक चतुर्विंशतिस्तव चिन्तन रूप कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग पारकर "सिद्धाणं बुद्धाणं०" कहकर चतुर्विंशतिस्तव द्वय चिन्तन रूप कायोत्सर्ग करे। सिद्धस्मरण, वीरवंदन, नेमिवंदन, अष्टापद, नन्दीश्वरादि नमस्कार रूप "चत्तारि

कायोत्सर्ग सामाचारी के अनुरोध से कोई प्रतिक्रमण के अन्त में करते हैं, तो कोई उस के आदि में। कायोत्सर्ग पारकर चतुर्विंशति-स्तव पढ़कर क्षमाश्रमण द्वयपूर्वक मण्डली में बैठकर सावधान मन से स्वाध्याय करें। मूल विधि से पौरुषी पर्यन्त स्वाध्याय पूर्ण होता है। वर्तमान में श्रीतपागच्छ की सामाचारी के अनुसार देवसिक प्रतिक्रमण के अनन्तर कम से कम भी पांच सौ गाथा परिमाण स्वाध्याय करना चाहिये और पिछली रात्रि में तीन सौ परिमाण। यह देवसिक विधि कही।

(प्रतिक्रमण गर्भ हेतु पत्र ६-१०)

अथावश्यकारंभे साधुः श्रावकश्चादौ श्रीदेवगुरुवंदनं विधत्ते। सर्वमप्यनुष्ठानं श्रीदेवगुरुवंदनविनयबहुमानादिभक्तिपूर्वकं सफलं भवति। × इतिहेतोर्द्वादशभिरधिकारैश्चैत्यवन्दना भाष्ये—

"पढम हिगारे वंदे, भावजिणे बीअए य दव्वजिणे।
इग चेइ अठवण जिणे, तइए ३ चउत्थं मि नाम जिणे ४॥१॥

तिहुअणठवणजिणे पुण, पंचमए ५, विहरमाण जिण छट्ठे ६।
सत्तमए सुअनाणं, अट्ठमए सव्वसिद्धथुई॥२॥

तित्थाहिव वीर थुई, नवमे ९ दसमे अ उज्जयंत थुई।
अट्ठावयाइ इगदसि ११ सुदिट्ठिसुरसमरणा चरिमे॥३॥

नमु १, जे अइ २, अरिहं ३, लोग ४, सव्व ५, पुक्ख ६,
तम ७, सिद्ध ८ जे दिवा ९। उज्जि १०, चत्ता ११ वेया-
वच्चग १२ अहिगार पढमपया॥४॥"

इति गाथोक्तैर्देववंदनं विधाय चतुरादि क्षमाश्रमणैः श्रीगुरून् वन्दते × श्राद्धस्तु तदनु "इच्छकारि समस्त श्रावकों वंदु" इति

जिन छट्ठे में, सप्तम अधिकार में श्रुतज्ञान, अष्टम में सर्वसिद्धों की स्तुति, नवम में तीर्थपति वीरस्तुति, दशवें में उज्जयन्त स्तुति, ग्यारहवें में अष्टापदादि स्तुति और अन्तिम बारहवें अधिकार में सुदृष्टिदेवता का स्मरण करना चाहिए। इन बारह अधिकारों के प्रथम पद निम्न प्रकार से हैं--

"नमुत्थुणं १, जे अइया २, सिद्धा ३, अरिहंत चेइयाणं ४, लोगस्स ५। सव्वलोए ६ पुक्खरवरदी ७ समतिमिर ८ सिद्धे।

जोदेवा ९ उज्जित १० चत्ता ११ वेयावच्चग १२॥"

अधिकारों के प्रथम पद हैं।

इस गाथा के विधानानुसार देववंदन करके चार क्षमाश्रमणों से श्रीगुरु को वन्दन करना। श्रावक गुरु वन्दन के अनन्तर--

"इच्छकारि समस्त श्रावको वन्दु०" ऐसा बोले, इसके बाद शिर जमीन पर लगाकर "सव्वस्सवि देवसिअ" इत्यादि सूत्र पढ़कर मिथ्या दुष्कृत दे। यह सकल प्रतिक्रमण का बीजभूत समझना चाहिए। फिर "करेमि भन्ते सामाइयं०" इत्यादि तीन सूत्र पढ़कर के कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग में प्रभात की प्रतिलेखना से लगाकर दिवस भर के अतिचारों को चिन्तन करे। "सयणासण" इत्यादि गाथा के चितन से अतिचारों का मन में संकलन कर कायोत्सर्ग को पारकर चतुर्विंशतिस्तव पढ़े। संडाशक प्रतिलेखना कर गुरु वन्दन के निमित्त मुखवस्त्रिका और शरीर दोनों को २५ प्रकार से प्रतिलेखित करे। फिर २ वन्दनक दे। यह वन्दना कायोत्सर्ग में याद किये हुए अति-चारों की आलोचना के लिये समझना चाहिये।

वन्दनक देकर शरीर नवांकर कायोत्सर्ग चिंतित और अपने मन से याद रक्खे हुए अतिचारों की आलोचना करते हुआ कहे, "इच्छा-

जिन, छट्ठे में, सप्तम अधिकार में श्रुतज्ञान, अष्टम में सर्वसिद्धों की स्तुति, नवम में तीर्थपति वीरस्तुति, दसवें में उज्जयन्त स्तुति, ग्यारहवें में अष्टापदादि स्तुति और अन्तिम बारहवें अधिकार में शुद्धदेवता का स्मरण करना चाहिए। इन बारह अधिकारों के प्रथम पद निम्न प्रकार से हैं—

"नमुत्थुणं १, जे अइया २, सिद्धा ३, अरिहंत चेइयाणं ४, लोगस्स ५। सव्वलोए ६ पुक्खरवरदी ७ तमतिमिर ८ सिद्धे।

जोदेवा ९ उज्जित १० चत्ता ११ वेयावच्चग १२॥"

अधिकारों के प्रथम पद हैं।

इस गाथा के विधानानुसार देववन्दन करके चार क्षमाश्रमणों से श्रीगुरु को वन्दन करना। श्रावक गुरु वन्दन के अनन्तर—

"इच्छकारि समस्त श्रावको वन्दु०" ऐसा बोले, इसके बाद सिर जमीन पर लगाकर "सव्वस्सवि देवसिअ" इत्यादि सूत्र पढ़कर मिथ्या दुष्कृत दे। यह सकल प्रतिक्रमण का बीजभूत समझना चाहिए। फिर "करेमि भन्ते सामाइयं०" इत्यादि तीन सूत्र पढ़कर के कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग में प्रभात की प्रतिलेखना से लगाकर दिवस भर के अतिचारों को चिन्तन करे। "सयणासण" इत्यादि गाथा के चिंतन से अतिचारों का मन में संकलन कर कायोत्सर्ग को पारकर चतुर्विंशतिस्तव पढ़े। संडाशक प्रतिलेखना कर गुरु वन्दन के निमित्त मुखवस्त्रिका और शरीर दोनों को २५ प्रकार से प्रतिलेखित करे। फिर २ वन्दनक दे। यह वन्दना कायोत्सर्ग में याद किये हुए अतिचारों की आलोचना के लिये समझना चाहिये।

वन्दनक देकर शरीर नवांकर कायोत्सर्ग चिंतित और अपने मन से याद रक्खे हुए अतिचारों की आलोचना करते हुआ कहे, "इच्छा-

कारेण संदिसह भगवन् देवसिअं आलोएमि०" इत्यादि सूत्र पढ़ता हुआ श्री गुरु के समक्ष अतिचार प्रकट करे। इस प्रकार दैवसिक अतिचार आलोचना के बाद मन, वचन और कार्य सम्बन्धी तमाम अतिचारों का संग्राहक "सव्वसवि देवसिअ०" इत्यादि पढ़े और "इच्छाकारेण संदिसह" इस वचन से अनन्तर आलोचित अतिचारों का प्रायश्चित्त मांगे। गुरु "पडिक्कमह०" इस प्रकार प्रतिक्रमण सूत्रात्मक प्रायश्चित्त का उपदेश करें।

(प्रतिक्रमण गर्भ हेतु पत्र ३-५)

अब रात्रिक प्रतिक्रमण सम्बन्धी कुछ लिखते हैं--

"इदानीं रात्रिक-प्रतिक्रमणक्रमः कश्चिदुच्यते-

पाश्चात्य निशायामे निद्रां परित्यज्य × ईर्यापथिकीं प्रतिक्रम्य-क्षमाश्रमणपूर्वक कुसुमिणदुस्सुमिण ओहडावणियं राइय पायच्छित्त विसोहणत्थं काउस्सग्गं करेमि" इत्यादि भणित्वा चतुर्विंशतिस्तव-चतुष्कचिन्तनरूपं कायोत्सर्गं कुर्यात्। श्रावकस्तु अकृतसामायिकः सामायिकोच्चारपूर्वं कायोत्सर्गं करोति × चैत्यवंदनां विधाय स्वा-ध्यायकायोत्सर्गादिधर्मव्यापारं विधत्ते यावत् प्राभातिकप्रतिक्रमणवेला तदनु चतुरादि क्षमाश्रमणैः श्रीगुर्वादीन् वंदित्वा क्षमाश्रमणपूर्वं "राइयपडिक्कमणइ ठाउं" इत्यादि भणित्वा भूनिहितशिराः "सव्व-स्सवि राइअ" इत्यादि सूत्रं × भणित्वाशक्रस्तवं पठति ×। उत्थाय "करेमि भंते सामाइअमित्यादि" सूत्रपाठपूर्वं × कायोत्सर्गत्रयं, करोति × सिद्धस्तवं पठित्वा संडासक प्रमार्जनपूर्वमुपविशति × पूर्ववन्मुखवस्त्रि-कादि प्रतिलेखनपूर्वम् वन्दनकदानादिविधि विधत्ते। तावद्यावत्प्रति-क्रमणानन्तरः कायोत्सर्गः × अत्र च कायोत्सर्गे श्रीवीरकृतं

उपवासादिकं प्रायश्चित्तं प्रतिपद्यते, ततो वंदनकदानपुरस्सरं प्रत्येकक्षामणकानि विधाय वंदनकदानपूर्वं "देवसिअं आलोइअं पडिक्कन्ता इच्छाकारेण भगवन् पक्खिअं पडिक्कमावेह" 'इच्छं' इति भणित्वा "करेमि भंते सामाइअ" इत्यादि सूत्रत्रयपाठपूर्वकं क्षमाश्रमणं दत्वा कायोत्सर्गस्थितः पाक्षिकसूत्रं शृणोति एकश्च साधुः सावधानमना व्यक्ताक्षरं पाक्षिक सूत्रं पठति। × पाक्षिकसूत्रानंतरं "सुअदेवया भगवई" इति सूत्रं भणित्वोपविश्य त्रिविना पाक्षिक प्रतिक्रमणसूत्रं पठति, उत्थाय तच्छेप कथयित्वा च करेमि भंते सामाइअमित्यादिसूत्रत्रयं पठित्वा प्रतिक्रमणेनाऽशुद्धानामतिचाराणां विशुद्धयर्थं द्वादश चतुर्विंशतिस्तवचिन्तनरूपं कायोत्सर्गं कुर्यात्. × ततो मुखवस्त्रिकां प्रतिलेख्य वंदनकपूर्वं इच्छाकारेण संदिसह भगवन् अब्भुट्ठिओमि समाप्तखामणेण अब्भितर पक्खिअं खामेउमित्यादि भणित्वा क्षामणकं विधत्ते। ततश्चतुर्भिः क्षमाश्रमणैः सामाचारी यथोक्तविधिना चत्वारि पाक्षिकक्षामणकानि कुर्वन्ति।× तदन्ते गुरवो भणंति नित्थारगपारगा होहत्ति, ततः सर्वे भणंति इच्छं। इच्छामो अणुसट्ठिं ति, ततो वंदनक–क्षामणक–वंदनक–गाथात्रिकादिपाठक्रमेण दैवसिकप्रतिक्रमणं कुर्यात्, "श्रुतदेवताकायोत्सर्गस्थाने भवनदेवता कायोत्सर्गः, स्तवस्थानेऽजितशांतिस्तवपाठश्च।×

(इति पाक्षिक प्रतिक्रमण विधि १२-१४)

अर्थ—पाक्षिक में पूर्व की तरह दैवसिक प्रतिक्रमण प्रारम्भ करके प्रतिक्रमण सूत्र पर्यन्त दैवसिक करले, फिर 'इच्छामि खमासमणो० मत्थएण वंदामि देवसिअं आलोइ पडिक्कन्ता० इच्छाकारेण संदिसह भगवन् पाक्षिक मुहपत्ती पडिलेहुं०" इस प्रकार बोलकर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करे, फिर वन्दनक देकर गुरु आदि संबुद्ध पुरुषों को

वन्दनकदानपूर्वक "देवसिअ आलोइअ पडिक्कंता [illegible]
भगवन् पक्खियं पडिक्कमावेह", गुरु आदेश से [illegible] कहकर
"करेमि भंते सामाइअं" इत्यादि सूत्र [illegible]पूर्वक क्षमाश्रमण देकर
कायोत्सर्ग स्थित पाक्षिक सूत्र सुने और एक साधु [illegible] में
व्यक्ताक्षरों में पाक्षिक सूत्र पढ़े। पाक्षिक सूत्र की समाप्ति के बाद
तुरन्त "सुअदेवया भगवई" गाथा पढ़कर बैठकर विधि से
निविष्ट पाक्षिक प्रतिक्रमण सूत्र पढ़े। प्रतिक्रमण के अन्त में
उठकर शेष कहने योग्य कहकर "करेमि भन्ते सामाइअं" इत्यादि
सूत्र पढ़के प्रतिक्रमण में अशुद्ध रहे अतिचारों की शुद्धि के लिये बारह
चतुर्विंशतिस्तव चिन्तन रूप कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग को पूरा
करके मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन कर वन्दनकपूर्वक "इच्छाकारेण
संदिसह भगवन् अब्भुट्ठिओमि समाप्तखामणेणं अब्भितरपक्खिअं
खामेउं" इत्यादि बोलकर क्षामणक करे। बाद में चार क्षमाश्रमणों
से चार पाक्षिक क्षामणक करे। तदनन्तर गुरु कहे "नित्थारग
पारगा होह" तब सब साधु बोले–"इच्छामो अणुसट्ठिं" उसके बाद
वन्दनकद्वय, क्षामणक, फिर वन्दन, गाथा त्रिक के पाठक्रम से दैवसिक
प्रतिक्रमण करे। श्रुतदेवता के कायोत्सर्ग के स्थान पर "भवन-

कृत्वाऽऽचार्यादिक्षामणार्थं प्रतिबद्धगाथात्रयसामायिककायोत्सर्ग दण्डक पठनपूर्वं चारित्राचारविशुद्धये कायोत्सर्गं करोति। २ लो० प्र० लो०, सव्वलोए अरिहंतचेइयाणं × कायो० १ लो०। पुक्खर- वरदी० सुअस्स भगवओ०, १ लो०। सिद्धाणं बुद्धाणं०, सिद्धानां भावनासारं स्तुतित्रयमुच्चारयति। सांप्रतं शेषमपि आचार्यपरम्परागतं भणित्वा श्रुतदेवा: श्रुतसमृद्ध्यर्थं, अन्यासां च क्षेत्रादिदेवता समाधानापादनार्थं कायोत्सर्गान् करोति, स्तुतीस्तु शृणोति, ददाति वा। पुन:संदंशकादि-प्रमार्जनपुरस्सरमुपविश्य मुखवस्त्रिकां प्रत्युपेक्ष्य समाप्तिवंदनं करोति। ततो:गुरुस्तुतिग्रहणे कृते स्तुतित्रयं वर्धमानं पठति। प्रणिपातदण्डादि च सर्वं सामाचार्याऽऽगतं करोतीति--
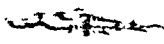
उक्तो देवसिक प्रतिक्रमणविधि:।

अर्थ---प्रथम साधु आदि के समीप मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर विधि से सामायिक और चैत्यवन्दन करे। इसके बाद जिस स्थान पर प्रतिक्रमण करना हो उस भूमिभाग की प्रतिलेखना, प्रमार्जना करके प्रतिलेखित आसन स्थापन करे, फिर स्थापनाचार्य स्थापन, सण्डाशक-प्रतिलेखनापूर्वक बैठकर सामान्य अतिचार का मिथ्या-दुष्कृत करके विधि से प्रणिपातदण्डक-शक्रस्तव पढ़कर दिवस के अतिचारों को याद करने के लिए कायोत्सर्ग दण्डक-उच्चारणपूर्वक कायोत्सर्ग करे, उसमें ज्ञानाचारादि के दिवस सम्बन्धी अतिचारों को याद कर नमो अरिहंताणं बोलकर कायोत्सर्ग पारे और प्रकट चतुर्विंशतिस्तव पढ़कर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर द्वादशावर्त-वन्दनपूर्वक उसी क्रम से गुरु के आगे चिंतित अतिचारों की आलोचना करे, फिर सूत्र पढ़े, उन्हीं कायोत्सर्ग में संस्मृत अतिचारों में जो कोई रह गया हो उन प्रत्येक के पश्चात्तापार्थं उठकर वन्दनकरणपूर्वक

गुरु को खमावे। [illegible] के लिए "आयरियउवज्झाए" इत्यादि तीन गाथा [illegible] कायोत्सर्ग दण्डकपठनपूर्वक चारित्राचार की विशुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करे, कायोत्सर्ग में २ लोगस्स का चिन्तन करे और बाद लोगस्स कहकर "सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं इत्यादि पाठपूर्वक एक लोगस्स का कायोत्सर्ग करे। पुक्खरवरदी०, सुअस्स भगवओ०, १ लो०। 'सिद्धाणं बुद्धाणं' इस सूत्र से भावनापूर्वक सिद्धों की तीन स्तुतियाँ बोले वर्तमान काल में सामाचारीपरम्परागत दूसरी गाथाएँ भी पढ़कर श्रुतज्ञानकी समृद्धि के लिए श्रुतदेवता का कायोत्सर्ग करे और क्षेत्रादि समाधान संपादन के लिए क्षेत्रदेवी का कायोत्सर्ग करे और स्तुति पढ़े अथवा सुने, फिर संदंशकादि प्रमार्जन-पूर्वक बैठकर मुख वस्त्रिका की प्रतिलेखना करके समाप्ति का वन्दन करे, फिर गुरु के एक वर्धमानस्तुति बोलने पर सभी स्तुतित्रय पढ़ें, फिर प्रणिपात दण्डकादि सर्वसमाचार्यागत विधान करे। यह दैवसिक प्रतिक्रमण-विधि कही।

रात्रिकोऽप्येवमेव, नवरं का० १ लो०। १ लो०। निशातिचार-चिन्तनं तृतीये। सिद्धस्तुतिं च विधाय × उपविश्य आलोचनसूत्र-पठनक्षामणादिकं पूर्ववत् कृत्वा आचार्यादिसंघ-सर्वजीव क्षामणा-प्रतिबद्धार्थगाथात्रयं × पठित्वा × षाण्मासिकायाः समारभ्य एक-दिनादिहान्या तावद् नयति येन कृतेन गुरु नियुक्तस्वाध्यायादिप्रयोजन हानिर्नोपजायते तावन्मात्रो एव संतिष्ठते। प्रतिपन्न प्रतिमोऽन्यो वा यथाशक्तिमानतो जघन्येनापि नमस्कारसहितं प्रतिपद्य तदेव विधिवत् गुरुसाक्षिकं प्रत्याख्याति, ततः स्तुत्यादिके पूर्ववत् कृते चैत्यवन्दने च समाप्तिर्भवतीति।

इतः ओघतः श्रावक प्रतिक्रमण विधिः।

भावार्थ—रात्रिक प्रतिक्रमण विधि का विधान भी लगभग इसी प्रकार का है। विशेष इतना है—२ कायोत्सर्ग एक एक लोगस्स परिमित करे, तीसरे कायोत्सर्ग में रात्रिकातिचारों का चिन्तन करे। सिद्धों की स्तुति पढ़कर बैठ के आलोचनासूत्र पढ़ और क्षामणादि पूर्ववत् करे, फिर ज्ञानादि, अथ, सर्वजीवक्षामणाप्रतिबद्ध गाथा तीन पढ़ें फिर षाण्मासिक तपस्या से आरम्भ कर एक २ दिन की हानि करता हुआ जो तप करना हो वहां तक नीचे उतरे, फिर कायोत्सर्ग पारकर चिन्तित नमस्कारसहित आदि कायोत्सर्ग चिन्तित तपका गुरुसाक्षिक प्रत्याख्यान करे, उसके बाद स्तुति आदि पूर्ववत् बोलकर चैत्यवन्दन करे और प्रतिक्रमण पूरा करे। यह सामान्य रूप से श्रावक प्रतिक्रमण विधि कही है।

श्रीचन्द्र सूरिकृत सुबोधा सामाचारीगत प्रतिक्रमण विधिः—

"साहु–सावयाणं" राइपडिक्कमण विही जहा—

"इरिया-कुसुमिणुस्सग्गो, जिण-मुणिवंदण तहेव सज्झाओ।
सव्वस्सवि सक्कत्थउ तिन्नि उस्सग्गा उ कायव्वा ॥१॥
चरणे दंसण नाणे, दुसु लोगुज्जोय तइय अइयारा।
पोत्ती वंदण आलोय सुत्त तह वंद-खामणयं ॥२॥
वंदण तव-उस्सग्गो, पोत्ती [illegible] पच्चक्खाणं तु।
अणुसट्ठि तिन्नि थुई, [illegible]-पडिलेहा ॥३॥

जिण मुणि वंदण पच्चक्खाणो पुत्ति वंदण लोए।
सुत्तं वंदण-खामण-वंदण तिन्नेव उस्सग्गा ॥१॥
चरणे दंसण नाणे, उज्जोया दुन्नि एक्क एक्को य।
सुय देवया दुसग्गा, पोत्ती वंदण तिथुई थोत्तं ॥२॥

(इति दैवसिक विधि)

मुहपोत्ती वंदणयं, संबुद्धखामणं तहाऽऽलोए।
वंदण-पत्तेय खामणाणि वंदणा य सुत्तं च ॥३॥
सुत्तं अब्भुट्ठाणं, उस्सग्गो पोत्ती वंदणं तहय।
पज्जंते खामणयं, पियं च इच्चाइ तह जाण ॥४॥

(इति पाक्षिक विधि)

भावार्थ—साधु-श्रावक रात्रि-प्रतिक्रमण की विधि इस प्रकार है-'इरिया वही' प्रतिक्रमण करके कुस्वप्न का कायोत्सर्ग करे। फिर जिन तथा मुनि वंदन कर स्वाध्याय करे। स्वध्याय कर "सव्वस्सवि॰ इत्यादि बोलकर शक्रस्तव पढ़कर तीन कायोत्सर्ग करे। पहला चारित्र शुद्धि के लिये, दूसरा दर्शनशुद्धि के लिये, इन दो कायोत्सर्गों में लोकोद्योत एक एकका चिन्तन करे। तीसरे में रात्रिक अतिचारों का चिन्तन करे। फिर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर वन्दना पूर्वक रात्रिक अतिचारों की आलोचना करे और प्रतिक्रमण सूत्र पढ़े, वन्दना करे, क्षामणक करे, फिर वन्दना कर तप चिन्तन का कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग पार कर मुखवस्त्रिका प्रतिलेखना पूर्वक वन्दनक दे और प्रत्याख्यान करे। "इच्छामि अणुसट्ठिं" बोलने के बाद वर्धमान तीन स्तुतियां बोले। देववन्दन करे "बहुवेलं संदिसाहो" कह कर प्रतिलेखना करे। यह रात्रिक प्रतिक्रमण की विधि है। इस प्रकार रात्रिक प्रतिक्रमण करना चाहिये।

अब दैवसिक प्रतिक्रमण की विधि कहते हैं-

प्रथम जिन तथा मुनि वन्दन करके अतिचारों की आलोचना का कायोत्सर्ग करे। फिर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर वन्दनक दे। वन्दना करके दैवसिक अतिचारों की आलोचना करे। फिर प्रति-क्रमण सूत्र पढ़े। वन्दना करे। 'अब्भुट्ठियो०' खमाये, फिर वन्दना कर तीन कायोत्सर्ग करे। चारित्र की शुद्धि के लिये, दर्शनशुद्धि के लिये और ज्ञानशुद्धि के लिये क्रमशः दो तथा एक एक उद्योतकरों के कायोत्सर्ग करे, फिर श्रुतदेवी आदि के दो कायोत्सर्ग कर मुख-वस्त्रिका-प्रतिलेखना कर वन्दना करें और वर्धमान तीन स्तुतियां पढ़े और स्तव पाठ करे। यह दैवसिक प्रतिक्रमण की विधि है।

अब पाक्षिक प्रतिक्रमण की विधि कहते हैं—

दैवसिक प्रतिक्रमण सू॰ कर पाक्षिक मुखवस्त्रिका की प्रति-लेखना करे। दो वन्दनक दे, संबुद्ध खामणा खमाये। पाक्षिक आलोचना करे फिर दो वन्दनक दे, फिर प्रत्येक क्षामणक खमावे, वन्दनक पूर्वक पाक्षिकसूत्र पढ़े, पाक्षिकसूत्र पूरा करने के बाद प्रतिक्रमण सूत्र पढ़ कर खड़ा होकर कायोत्सर्ग करे, पाक्षिक कायोत्सर्ग के अन्त में मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनपूर्वक वन्दनक देकर समाप्ति का अब्भुट्ठियो खमावे, अन्त में "पियंच मे०" इत्यादि चार क्षामणक बोले। यह पाक्षिक आदि की विधि है।

पौर्णिमिक-प्रतिक्रमण विधिः---

प्रतिक्रमण विधिगाथा--

"जिण-मुणि वंदण अइआ,-रुस्सग्गो पुत्ति वंदणा लोए।
सुत्तं वंदण-खामण,- वंदण तिन्नेव उस्सग्गा ॥१॥
चरणे दंसण नाणे, उज्जोआ दुन्नि एक्कु इक्को य।
सुयदेवया दुस्सग्गा, पोत्ती वंदण तिथुइ सुत्तं ॥२॥

पाक्षिकदिने तु दैवसिक प्रतिक्रमण मध्ये-- 'अब्भुट्ठिओमि आराहणाए वंदामि जिणे चउवीसं इत्यनन्तरं पक्खियमुहपत्ती पेहीयं वंदण, संबुद्धा खामणं पाक्षिके त्रयाणां, चातुर्मासिके पंचानां, सांवत्सरिके सप्तानां साधूनाम्।

अर्थ--पक्खियालोयणं-पाक्षिक-चातुर्मासिक-सांवत्सरिका लोचनेपु पडिक्कमह, चउत्थेण, छट्ठेण, अट्ठमेण, इत्यादेशेन क्षामणं गुरुर्ददाति, ततो गुरुरुत्थाय वक्ति-"इच्छाकारेण अमुक तपोधन!" ततः स गुरून् वंदित्वा भणति-"इच्छामो अणुसट्ठिं×" गुरुर्भणति-"अब्भुट्ठिओऽहं पत्तेयखामणेण अब्भितरपक्खियं, खामेउं।" "शिष्य- "अहमवि खामेमि तुब्भे" इत्युक्त्वा, गुरुश्च किंचिन्नतवपु, खामेमि पक्खिय पन्नर सह्लं दिवसाणं, पन्नरसह्ल राईणं जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं" इत्यादि सकलमपि क्षामणकं भणति, अहो तपोधन! अर्थत्तिउ असमाधानु, असंतोपु स्यातु काइं उ जं तुब्भ किउ तं सर्वं क्षमे, मिच्छामि दुक्कडउ। शिष्यस्तु भणति-प्रभो! जं काई मइ अभत्ति, अविनय, अवज्ञा, आशातना तुम्हकी तहिं सर्वं हि पसाउ करीउ खमेउ मिच्छामि दुक्कडं। एवं सर्वेऽपि साधवो यथा ज्येष्ठं क्षामणकं कुर्वन्ति। श्रावकस्तु एवं भणति प्रभो! जं कांइ मइ अभत्ती अविनओ

अवज्ञा आशातना तुम्ह की तहि सव्वहि पसाउ करी खमेउ मिच्छामिदुक्कडं। एवं सर्वेऽपि साधवो यथाज्येष्ठं क्षामणकं कुर्वन्ति। श्रावकस्त्वेवं भणति-क्षमा० अब्भुट्ठिओऽहं पत्तेय खामणेणं। अब्भितर-पक्खिउं खामेउं। साधु-अहमवि खामेमि तुब्भे इति। ततः श्राद्धः साधुपादलग्नः खामेमि पक्खियं इत्यादि सकलमपि क्षामणकं भणति। साधुस्तु परपत्तियं तिपदात् अविहिणा सारिया वारिया चोइया पडिचोइया मणेण वा वायाए वा काएण वा मिच्छामि दुक्कडंति भणति।"

"श्रावकाणां तु मिथः क्षामणा एव-ज्येष्ठो भणति-इच्छाकारइ अमुक सराव (सरावकः) वांदउं। कनिष्ठोऽप्याह-वांदउं, खामउं। ततो द्वावपि भणतः—"खामेमि पक्खियं" पन्नरसह्णं दिवसाणं पन्नरसह्णं राईणं जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं, अविहि सारिया वारिया, भणिया, भासिया मिच्छामि दुक्कडं।" लघुस्त्विति भणन् ज्येष्ठस्य जानुनोर्लगति। पुनर्वंदउं खामउं द्वावपि भणतः। एवं सर्वेषु क्षमितेषु उत्संघटितां मुखवस्त्रिकां प्रतिलिख्य द्वे वंदनके दत्वा देवसिय आलोइयं पडिक्कंता इच्छाकारेण भगवन् पक्खियं पडिक्कमावहे इति गुरूक्तेऽन्येप्येतद् भणंति। ततो गुरुर्वक्ति-पाखियसुत्त काढिउ संकिसि ? स वंदित्वाह-तुम्हारइं पसाइं, पुनर्गुरुराह-इच्छाकारिं पाखियसूत्रउ काढउ।

सोऽथ वंदित्वा ऽऽह-इच्छा० पाखिय सुत्त काढउं, इच्छं, त्रिनमस्कारानुच्चार्य पाक्षिकसूत्र मूर्ध्वस्थो भणति, शेष साधवस्तु पर्यक-वज्र-गोदोहिकादि चतुरशीत्यासनस्थाः कायोत्सर्गस्था वा यथाशक्ति शृण्वन्ति।"

सारांश—जिनवन्दन और मुनिवन्दन के वाद अतिचार की आलोचना का कायोत्सर्ग, मुहपत्तिप्रतिलेखना, वंदना और आलोचना

सूत्र पढ़ना। दो वंदन, क्षामणा, फिर वंदन और बाद में ३ कायोत्सर्ग चारित्र, दर्शन और ज्ञानशुद्धि के निमित्तक, इनमें क्रमशः दो, एक और एक उद्योतकरों का चिन्तन करना, श्रुत-क्षेत्र देवता के दो कायोत्सर्ग, मुहपत्तिप्रतिलेखना, वन्दन, फिर त्रिस्तुति पाठ और स्तोत्रपाठ। पाक्षिक के दिन दैवसिक प्रतिक्रमण के मध्य में 'अब्भुट्ठिओमि आराहणाए' यहाँ से लेकर 'वंदामि जिणे चउवीसं' तक बोलकर पाक्षिक मुहपत्ति प्रतिलेखना, वन्दन, संबुद्धाक्षामणा करना पाक्षिक प्रतिक्रमण में तीनों को, चातुर्मासिक में पाँचों को और सांवत्सरिक में सात साधुओं को खमाणा।

अब पाक्षिक आलोचना चातुर्मासिक और सांवत्सरिक आलोचना में गुरु आदेश करे "पडिक्कमह चतुर्थ भक्त, षष्ठभक्त और अष्टम भक्त का गुरु आदेश करे, फिर गुरु क्षमाश्रमण देकर कहे-"इच्छाकारेण अमुक मुनि" यह सम्बोधन सुनकर आमन्त्रित मुनि वंदनपूर्वक खड़ा होकर कहे-"इच्छामि अणुसट्ठिं", गुरु कहे "अब्भुट्ठिओऽहं पत्तेयखामणेणं अभ्यन्तर पक्खियं खामेउं" शिष्य कहे-"अहमवि खामेमि तुब्भे", यह कहकर गुरु किंचित् शरीर नमाकर "खामेमि पक्खियं पन्नरसह्णं दिवसाणं पन्नरसह्णं राईणं जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं" इत्यादि सम्पूर्ण क्षामणक पाठ बोले और कहे-हे तपोधन! अप्रीति, असमाधान, असंतोष, आदि हमारी तरफ से कुछ हुआ हो उन सबका "मिच्छामि दुक्कड" देता हूँ। तब शिष्य कहे-प्रभो! मैंने कुछ अभक्ति, अविनय, अवज्ञा, आशातना आदि की हो उन सबको कृपा करके क्षमा करें, मैं मिथ्या दुष्कृत करता हूँ। इस प्रकार सर्व साधु यथाज्येष्ठ क्रम से क्षामणक करते हैं, श्रावक इस प्रकार कहता है—"प्रभो! जो कोई मैंने आपकी अभक्ति, अविनय

अवज्ञा, आशातना की हो तो कृपाकर क्षमा करना मैं अपना मिथ्या दुष्कृत करता हूँ।" श्रावक क्षमाश्रमण देकर के "अब्भुट्ठियोऽहं पत्तेय-खामणेणं अब्भितर पक्खियं खामेउं", बोले तव साधु कहे "अहमवि खामेमि तुब्भे" उसके बाद श्रावक साधु के चरणों का स्पर्श करके सकल क्षामणक का सूत्र बोले, उसमें साधु परपत्तियं बोलते हैं, तव साधु अविधि से सारणा, वारणा की चोइणा, प्रतिचोइणा की हो तदर्थ मन, वचन और काया से मिच्छामि दुक्कड करता है।

श्रावकों के परस्पर क्षामणे इस प्रकार होते हैं-बड़ा श्रावक प्रथम कहे-"इच्छाकारि अमुक श्रावक तुम्हें वांदता हूं।" छोटा श्रावक कहे-"मैं तुमको वांदता हूं, खमाता हूँ", उसके बाद दोनों कहे- "खामेमि पक्खियं पन्नरसह्लं दिवसाणं पन्नरसह्लं राईणं जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं, अविधि से सारिया, वारिया, भणिया, भापिया मिच्छामि दुक्कड।"

छोटा श्रावक इस प्रकार बोलता हुआ बड़े श्रावक के जानुओं में हाथ दे, फिर वन्दन कर क्षमापन कर दोनों आगे प्रति-क्रमण करें, इस प्रकार सबं को क्षमाकर उत्संघट्टित मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर वंदनक देकर "देवसियं आलोइयं पडिक्कंता इच्छाकारेण भगवन् पक्खियं पडिक्कमावेह" ऐसा गुरु के कथन के बाद दूसरे भी इसी प्रकार कहें, तब गुरु कहे-अमुक पाक्षिक सूत्र पढ़ सकोगे? वह वंदन करके बोले,—"आपके प्रसाद से", फिर गुरु कहे "इच्छाकारि सूत्र पढो।" वह साधु वंदन करके कहे—

"इच्छाकारेण संदिसह भगवन् पाक्षिक सूत्र पढूं इच्छं, कहकर तीन नमस्कार मंत्र का उच्चारण कर खड़ा खड़ा पाक्षिक सूत्र बोले

और शेष साधु पर्यंकवज्रगोदोहिका आदि चौरासी आसनों में से किसी भी आसन से कायोत्सर्ग में स्थित होकर सुने।

श्रावकस्तु-क्षमा० इच्छा० पाक्षिक सूत्र सांभलउं, इच्छं इत्युक्त्वा शृण्वन्ति, केवलानां च श्रावकाणां प्रतिक्रामतां एकः स्थापनाचार्याग्रे क्षमा० इच्छा० पक्खिय सुत्तु भणउ इच्छं, ऊर्ध्वस्थः प्रतिक्रमण-सूत्रमेव पाक्षिकालापेन भणति, शेषाः शृण्वन्ति। तदनुसर्वेऽप्युपविश्य प्रतिक्रमणसूत्रं भणंति, अब्भुट्ठिओमि आराहणाए०वंदामि जिणे चउवीसं, करेमि भंते सामाइयं, इच्छामि ठाउं काउस्सग्गं० चतुर्विंशति-स्तवान् चंदेसु निम्मलयरेत्यन्तान् १२ चिन्तयन्ति। अथ तं सकलं भणित्वा मुहपत्तीपेहणं, वंदणयं, समाप्तिखामणा, पक्खियखामणाणि चत्तारि, सावयाओचत्तारि खमासमणाणि दिति तत्राद्ये पाक्षिके-क्षामणे-तुब्भेहिं समं, द्वितीये-'अहमवि वंदावेमि चेइयाइं' तइए-'आयरियस्स संतियं' चउत्थे-'नित्थारगपारगा होहत्ति, गुरूक्ते शिष्याः 'इच्छामो अणुसट्ठिं' इत्याहुः गुरुराह-देवसिणिजिउ एवं चातुर्मासिके, पक्खिय शब्दस्थाने चातुर्मासिकालापः सांवत्सरिके सांवत्सरिकालापः। मूलगुणोत्तर गुणकायोत्सर्गौ चातुर्मासिके विंशतिः, सांवत्सरिके चत्वारिंशं चतुर्विंशतिस्तवाः सनमस्काराश्चिन्तयन्ते। तथा श्रुतदेवता कायोत्सर्गस्थाने। भवनदेवताकायोत्सर्गः तदीय स्तुतिभणनं च —इति पाक्षिक प्रतिक्रमणविधिः॥

अर्थ—श्रावक क्षमाश्रमण देकर 'इच्छाकारेण संदिसह भगवन्, पाक्षिक सूत्र साभलूं' इच्छं यह कहकर सुने। अकेले श्रावक प्रति-क्रमण करे तब एक श्रावक स्थापनाचार्य के आगे क्षमाश्रमण देकर कहे-'इच्छाकारेण संदिसह भगवन् पक्खियसूत्र भणुं।' इच्छं कहकर खड़ा २ प्रतिक्रमण सूत्र ही पाक्षिक के नाम से पढ़े। शेष सब सुनें।

सूत्र की समाप्ति के बाद सब बैठकर प्रतिक्रमण सूत्र पढ़ते हैं। "अब्भुट्ठिओमि आराहणाए" इत्यादि से लेकर "वंदामि जिणे चउवीसं" यहाँ तक प्रतिक्रमण सूत्र पूरा कर 'करेमि भंते सामाइयं इच्छामि ठामि' इत्यादि सूत्र पढ़कर कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग में चन्देसु निम्मलयरा यहाँ तक चतुर्विंशतिस्तव बारह चिन्तवे, कायोत्सर्ग करके प्रगट लोगस्स कहे, मुहपत्ति प्रतिलेखना करे, मुहपत्ति प्रति-लेखना कर दो वंदनक दे। समाप्ति अब्भुट्ठियो क्षमावे, चार पाक्षिक खमासमण दे। पहले पाक्षिक क्षामणे में 'तुब्भेहिं समं' दूसरे में अहमवि वंदावेमि चेइयाइं' तीसरे में 'आयरियसन्तियं' चौथे में 'नित्थारग पारगा होहत्ति" गुरु के कहने पर सब शिष्य कहें—इच्छामो अणुसट्ठि? गुरु कहे 'देवसि पडिक्कमणे ठाएह' 'इसीप्रकार चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में पक्खिय शब्द के स्थान में चातुर्मासिक का नाम लेना चाहिये और सांवत्सरिक में सांवत्सरिक नाम लेना, मूलगुण उत्तर गुण कायोत्सर्गों में चातुर्मासिक में २० और सांवत्सरिक में ४० चतुर्विंशतिस्तव और ऊपर एक नमस्कार चिन्तन किया जाता है। तथा श्रुतदेवता के कायोत्सर्ग के स्थान भवनदेवता का कायोत्सर्ग और उसकी स्तुति बोलनी चाहिये। इस प्रकार पाक्षिक प्रतिक्रमण विधि समाप्त हुई।

प्रतिक्रमण विधि की २ संग्रहगाथाएं नीचे दी जाती हैं—

"मुहपत्ती वंदणय, संबुद्धाखामणं तहा लोए।
वंदण-पत्तेय-खामणाणि वंदणं सुत्तं ॥१॥

सुत्तं अब्भुट्ठाणं, उस्सग्गो पुत्ति वंदणं चेव।
सम्मत्त खामणाणि य चउरो तह थोभ वंदणया ॥२॥

चौथा परिच्छेद

आचारविधि-सामाचारीगत प्रतिक्रमणविधि—

प्रथम रात्रि प्रति क्रमण विधि--

"इरिया-कुसुमिणुस्सग्गो, जिण-मुनि वंदण तहेव सज्झाओ ।
सव्वस्सवि सक्कथओ, तिन्नि उस्सग्गउ कायव्वा ॥१॥
चरणे दंसण-नाणे, दुसुलोगुज्जोय तइय अइयारा ।
पुत्ती वंदण आलोअ सुत्त तह वंद खामणयं ॥२॥
वंदण-तव उस्सग्गो, पुत्ती वंदणय पच्च खाणं तु ।
अणुसट्ठि तिन्नि थुई, वदण-बहुवेल-पडिलेहा ॥३॥"

सरलार्थ-'इरियावही०' प्रतिक्रमण करके कुस्वप्नका कायोत्सर्ग करे, फिर जिन तथा मुनिवन्दन कर स्वाध्याय करे। "सव्वसवि०" बोलकर शक्रस्तव कहे और क्रमशः तीन कायोत्सर्ग करे । चारित्र शुद्धि के लिये, दर्शन शुद्धि के लिये और ज्ञान शुद्धि के लिये। प्रथम के दो कायोत्सर्गों में एक एक लोकोद्योतकर का चिन्तन करे और तीसरे में रात्रि अतिचारों का चिन्तन करे। कायोत्सर्ग पार कर मुख वस्त्रिका की प्रतिलेखना करें, वन्दनक दे, रात्रिक अतिचारों की आलोचना करे। फिर प्रतिक्रमण सूत्र पढे। दो वन्दनक दे। अब्भुट्ठियो०

के कायोत्सर्ग के स्थान भवनदेवी का कायोत्सर्ग और अजितशांति-स्तव का पाठ। संबुद्धाक्षामणों में चातुर्मासिक में ५ और वार्षिक में ७ को खमाना। पाक्षिक कायोत्सर्ग में १२ उद्योतकरों का चिन्तन, और सांवत्सरिक कायोत्सर्ग में ४० उद्योतकर और १ नमस्कार का चिन्तन करना चाहिए ॥६-८॥

दैवसिक प्रतिक्रमण सूत्र पढ़ने पर क्षमाश्रमणपूर्वक शिष्य कहता है—"दैवसिक आलोचना कर प्रतिक्रमण किया है अब भगवन् इच्छानुसार आज्ञा दीजिये, पाक्षिक मुहपत्ति की प्रतिलेखना करता हूं।" वाद मुहपत्ति प्रतिलेखना कर दो वन्दनक दे के कहे—"हे भगवन्! इच्छापूर्वक आदेश कीजिए मैं संबुद्धाखामणक द्वारा पाक्षिक के भीतर जो कुछ अपराध हुए हैं। उनको क्षमाने के लिये खड़ा हूं और मेरी इच्छा से क्षमाता हूं। पन्द्रह दिनों, पन्द्रह-रात्रियों में जो कुछ भी अप्रीति आदि हुए हों" इत्यादि अब्भुट्ठियो सूत्र का पाठ वोले, प्रथम गुरु स्थापनाचार्य को क्षमावे, वाद में सात आदि मुनियों की संख्या हो तो गुरु से लेकर ५ तक को क्षमाना। अगर ७ से कम हो तो ३ को खमाना, फिर उठकर "इच्छाकारेण संदिसह पाक्षिक आलोचना करूं, हे भगवन् आदेश दीजिये, पाक्षिक अतिचारों की आलोचना करूं ?" गुरु का आदेश होने पर कहे—"इच्छं आलोएमि॰" "जो मे पक्खिओ॰" इत्यादि पाठ पढ़कर अतिचारों की आलोचना करे। आलोचना करने के वाद "सव्वस्सवि॰ पक्खिय॰" इत्यादि समुदाय के पढ़ने पर गुरु आदेश दे प्रतिक्कमह॰" अर्थात्—'प्रतिक्रमण करो'। फिर गुरुवचन—"चउत्थेण॰" चतुर्थ भक्त इत्यादि होने पर तस्स मिच्छामि दुक्कड अर्थात् शिष्य कहे—मेरा वह दुष्कृत मिथ्या हो। वाद में वन्दन देने

पर गुरु कहे—"देवसिअं आलोइयं अर्थात् देवसिक आलोचना प्रतिक्रमण किया। शिष्य कहे भगवन् इच्छापूर्वक आदेश दीजिये। मैं पाक्षिक सम्बन्धी अपराध खमाने के लिए खड़ा हुआ हूँ। प्रत्येक को क्षामणा करूँगा। गुरु के आदेश पर शिष्य 'इच्छं' ऐसा बोले। यहां सर्व प्रथम गुरु कहे "इच्छकारी अमुक तपोधन!" इस प्रकार गुरुके संबोधन करने पर सबसे बड़ा शिष्य कहे-"मत्थएण वंदामि" यह कह कर क्षमाश्रमण दे। तब गुरु कहे—"मै प्रत्येक खामण से पाक्षिक खमाता हूँ।" तब बड़ा शिष्य कहे "अहमपि खामेमि०'। मैं भी आपको क्षमाता हूं।" यह कह कर जमीन पर शिर रखकर बोले-"इच्छं खामेमि पक्खियं पन्नरसह्लं राईणं दिवसाणं० जं किंचि अपत्तियं" इत्यादि पाठ कहे, तबगुरु भी "पनरसह्लं०" इत्यादि बोले, परन्तु गुरु "उच्चासने समासने०" ये दो शब्द न कहे। इसी प्रकार क्रमशः उतरते हुए एक दूसरे के बाद परस्पर साधु क्षमणा करे। लघु वाचनाचार्य के साथ प्रतिक्रमण करने वालों में ज्येष्ठ साधु प्रथम स्थापनाचार्य को क्षमाये फिर सब साधु यथारात्निक को खमाए। गुरु के अभाव में सामान्य साधु प्रथम स्थापनाचार्य को खमाते हैं। इसी प्रकार श्रावक भी। श्रावकों के सम्बन्ध में विशेष यह है कि बड़ा श्रावक कहे-"अमुक प्रमुख समस्त श्रावकों को वांदता हूँ२, दो बार बोले, या वृद्ध कहे-"अब्भुट्ठियोमि०" इत्यादि। दूसरे श्रावक कहें "अहमपि खामेमि" में भी खमाता हूं तुमको। दोनों कहें-"पनरसह्लं दिवसाणं पनरसह्लं राईणं भण्यां भाण्यां मिच्छामि दुक्कडं" उसके बाद वंदनक देकर बोले देवसिक आलोचना प्रतिक्रमण किया, हे भगवन् इच्छा पूर्वक पाक्षिक प्रतिक्रमण कराइये। गुरु कहे—अच्छी तरह प्रतिक्रमिये, तब शिष्य 'इच्छं' कहकर "करेमि भंते सामाइयं०" इत्यादि पूर्वक

"इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे पक्खिओ०" इत्यादि बोलकर क्षमाश्रमण देकर कहे- "पाक्षिक सूत्र सांभलुं।" फिर यथाशक्ति कायोत्सर्ग स्थित सर्व साधु सांभले, सूत्र पूरा होने पर बैठ कर निविष्ट प्रतिक्रमण सूत्र पढ़े, सूत्र की समाप्ति में "करेमि भंते०" इत्यादि पूर्वक कायोत्सर्ग करके बारह उद्योतकरों का चिन्तन करे। कायोत्सर्ग पार कर चतुर्विंशतिस्तव पढ़ के मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनापूर्वक वन्दनक देकर कहे-"इच्छाकारेण संदिसह भगवन् अब्भुट्ठिओमि समाप्तिखामणेणं अब्भितर पाक्खिअं खामेउं०" इत्यादि। क्षामणा कर उठकर कहे-"इच्छाकारेण संदिसह भगवन् पक्खी खामणां खामउं" गुरु के आदेश देने पर कहे-'इच्छं' बाद साधु क्षमाश्रमणपूर्वक भूमि पर सिर नवांकर "इच्छामि खमासमणो पिअं च मे०" इत्यादि चार खामणक बोले। श्रावक ! एक नमस्कार भणे। बाद में "इच्छामो अणुसट्ठिं०" कह कर पहले की तरह आगे 'दैवसिक' प्रतिक्रमण करे।

(आचारविधि सामाचारी पत्र १०-११)

जिनवल्लभगणिकृता प्रतिक्रमणसामाचारी

"सम्मं नमिउं देविन्द-विन्दवंदियपयं,महावीरं ।
पडिकमण समायारिं, भणामि जह, संभरामि अहं ॥१॥
पंच-विहायार-विसुद्धि,-हेउमिह साहू सावगो वा
पडिकमणं सह गुरुणा, गुरु विरहे इक्कोवि

तप २४ मित्ति २५ गोरव २६ करेणेहिं २७ पलियं चियं २८ भयं २९ नि च ।
आलिद्धमणालिद्धं ३०, चूलिय ३१ चुडलित्ति ३२ — बत्तीसं ॥१२॥

दुपवेस–महाजायं, दुश्रोणयं प बारसावत्तं ।
इग निक्खमं तिगुत्तं, चउसिर नमणं ति पणवीसा ॥१३॥

अह सम्मभवणयंगो, करजुय विहि धरिय पुत्तिरय हरणो ।
परिचिंतिएऽइयारे, जहक्कमं गुरु पुरो वियडे ॥१४॥

अह उवविसित्तु सुत्तं, सामाइयमाइयं पढिय पयश्रो ।
अब्भुट्ठिओमि इच्चाइ पढइ दुहउट्ठिश्रो विहिणा ॥१५॥

दाऊणं वन्दणं तो पणगाइसु जइसु खामए तिन्नि ।
किइकम्मं करिय आयरियमाइ ठिओसढ्ढो गाहातिगं पढइ ॥१६॥

इह सामाइय–उस्सग्ग–सुत्त मुच्चरिय काउसग्ग ठिओ ।
चिन्तइ उज्जोयदुगं, चरित्तअइयारसुद्धिकए ॥१७॥

विहिणा पारिय सम्मत्त,–सुद्धिहेउं च। पढइ उज्जोअं ।
तह सव्वलोयअरहंत–चेइयाराहणुस्सग्गं ॥१८॥

काउं उज्जोयगरं, चितिय पारेइ सुद्धसम्मत्तो ।
पुक्खरवरदीवढ्ढं, कढ्ढइ सुइसोहणनिमित्तं ॥१९॥

पुण पणवीसुस्सासं, उस्सग्गं करेइ पारए विहिणा ।
तो सयलकुसल किरिया–फलाण सिद्धाण पढइ थयं ॥२०॥

अह सुअसमिद्धिहेउं, सुअदेवी अे करेइ उस्स
चिंतेइ नमुक्कारं, सुणइ व देई व तीइ

एव खित्तसुरीए, उस्सग्गं कुणइ सुणइ देइ थुः।
पढिउं च पंचमंगल, मुवविसइ पमज्ज संडासे ॥२२॥
पुव्वविहिणेव पेहिय, पुत्तिदाउण वंदणं गुरुणो।
इच्छामो अणुसट्ठि ति भणिय जाणूहि तो ठाई ॥२३॥
गुरुथुइगहणे थुई तिन्नि वड्ढमाणक्खरस्सरा पढइ।
सक्कत्थव थवं पढिय कुणइ पच्छित्तउस्सग्गं ॥२४॥
एव ता देवसिय, राइयमवि एवमेव णवरि तहिं।
पढमं दाउं मिच्छामि दुक्कडं पढइ सक्कथयं।२५॥
उट्ठिय करेइ विहिणा उस्सग्गं चितए (अ) उज्जोयं।
बीयं दंसणसुद्धीए, चितए तत्थ वि एमेव ॥२६॥
तइए निसाइयारं, जहक्कम चिंतिऊण पारेइ।
सिद्धत्थवं पढित्ता, पमज्ज संडासमुवविसइ ॥२७॥
पुव्वं च पुत्तिपेहण, वंदणमालोयसुत्तपढणं च।
वंदण-खामण-वंदण गाहातिगपढणमुस्सग्गो ॥२८॥
तत्थ य चितइ संजम-जोगाण न होइ जेण मे हाणी।
तं पडिवज्जामि तवं, छम्मासं ता न काउमलं ॥२९॥
एगाइ-इगुणतीसूणियं पि न सहो न पंचमासमवि।
एवं च उ ति दुमासे, न समत्थो एगमासं पि ॥३०॥
जा तं पि तेरसूणं, चुत्तीसइमाइतो दुहाणीए।
जाव चउत्थं तो आयंबिलाइ जा पोरिसि नमो वा ॥३१॥
जं सक्कइ तं हियए, धरित्तु पारित्तु पेहए पुत्तिं।
दाउं वंदणमसढो, तं चिय पच्चक्खए विहिणा ॥३२॥
इच्छामो अणुसट्ठि-ति, भणिअ उवविसिअ पढइ तिन्नि थुई।
मिउ सद्देणं सक्कत्थयाइ तो चेइए वंदे ॥३३॥

[illegible]

[illegible]

[illegible] ॥२॥

[illegible] ॥३॥

सामायिक पाठपूर्वक "[illegible] ([illegible])" इत्यादि पाठ पढ़कर दोनों भुजायें नीचे लम्बी कर कूर्परों द्वारा पहनने का वस्त्र दबाकर खड़ा २ कायोत्सर्ग करे ॥४॥

घोटक आदि दोषों से रहित हो कायोत्सर्ग करे। संयती १ कपित्थ २ घन ३ लता ४ लंबोत्तर ५ मालिन ६ शबरी ७ वधू ८ प्रेक्षा ९ वारुणी १० भंवर ११ अंगुलि १२ शीर्ष १३ मूक १४ हय १५ काय १६ निगड १७ उद्धी १८ ॥५॥

स्तंभादि १९ दोषरहित, भाव और द्रव्य दोनों प्रकार से खड़ा हो कायोत्सर्ग करे। नाभि के नीचे और जानु के ऊपर चार अंगुल पहनने का वस्त्र रखकर कायोत्सर्ग करना ॥६॥

उसमें दिन में लगे हुए अतिचार यथाक्रम हृदय में धारण करके नमस्कारपूर्वक कायोत्सर्ग पारे और ऊपर चतुर्विंशतिस्तव सूत्र कहे ॥७॥

संडासक प्रमार्जन करके बैठकर दोनों बाहुओं को हृदय को न अड़ा कर मुहपत्ती और शरीर की २५ प्रकार से प्रतिलेखना करे ॥८॥

उठ कर खड़ा हुआ सविनय विधिपूर्वक गुरु को कृतिकर्म करे। कृतिकर्म में ३२ दोषों को टाले और २५ आवश्यक से विशुद्ध कृतिकर्म करे ॥९॥

स्तब्ध १ प्रविद्ध २ अनादृत ३ परिपिण्डित ४ अंकुश ५ मत्स्योद्वर्त ६ कच्छपरिंगित ७ दोलायित ८ दर्दुर ९ वेदिकाबद्ध १० मनोदुष्ट ११ भय १२ तर्जित १३ शठ १४ हीलित १५ स्तेनिक १६ प्रत्यनीक १७ दृष्टादृष्ट १८ शृंग १९ कर २० मोचन २१ ऊन २२ मूक २३ ॥११॥

लव २४ मैत्री २५ गौरव २६ कारण २७ पर्यंचित २८ भय २९ आलिद्ध अनालिद्ध ३० मूलिका ३१ और चुडलिया ३२, ये वन्दन के बत्तीस दोष हैं ॥१२॥

वन्दन में दो प्रवेश, यथाजात, दो नमन, द्वादशावर्त, एक निष्क्रमण, त्रिगुप्त और चतुःशिर नमन ये २५ ॥१३।

अब सम्यक् अवनताङ्ग हो (शरीर नमाकर) दोनों हाथों में मुख-वस्त्रिका और रजोहरण धारण कर कायोत्सर्ग में चिन्तित अतिचारों को यथाक्रम गुरु के सामने प्रकट करे ॥१४॥

बाद में बैठकर सामायिक आदि प्रतिक्रमण सूत्र पढ़कर "अब्भुट्ठियोमि०" इत्यादि पढ़ता हुआ भाव और द्रव्य से विधिपूर्वक खड़ा होकर ॥१५॥

फिर वन्दनक देकर पांच साधुओं में से तीनों को खमावे और कृतिकर्म करके "आयरिय उवज्झाए" इत्यादि श्रद्धावान् होकर तीन गाथाएँ पढ़े, यहाँ सामायिक और कायोत्सर्ग सूत्र पढ़कर कायोत्सर्ग में स्थित होकर दो चतुर्विंशतिस्तव चिन्तन करे, जिससे चारित्र के अतिचारों की शुद्धि हो ॥१६॥१७॥

विधिपूर्वक कायोत्सर्ग पार कर सम्यक्त्व शुद्धि के हेतु नामस्तव पढ़े और सर्वलोकगत अरहन्त प्रतिमाओं की आराधना के लिये कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग में "उद्योतकर" का चिन्तन करके कायोत्सर्ग पूरा करे ॥१८॥

श्रुतज्ञान की समृद्धि के लिए श्रुतदेवी का कायोत्सर्ग करे, कायोत्सर्ग में एक नमस्कार का चिन्तन कर श्रुतदेवी की स्तुति कहे अथवा सुने ॥२१॥

इसी प्रकार क्षेत्र देवी का कायोत्सर्ग करे और उसकी स्तुति बोले अथवा सुने, ऊपर पंच मंगल पढ़कर संडासा प्रतिलेखनापूर्वक बैठ जाय ॥२२॥

पूर्वोक्त विधि से ही मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना कर गुरु को वन्दनक देकर "इच्छामो अणुसट्ठिं" ऐसा कह कर दोनों जानुओं के बल बैठे ॥२३॥

गुरु के एक स्तुति पढ़ने पर दूसरे सभी वर्धमान अक्षर और स्वर से तीन स्तुतियाँ बोलें, फिर शक्रस्तव पढ़कर प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करे ॥२४॥

यह दैवसिक प्रतिक्रमण की विधि कही। इसी प्रकार रात्रिक प्रतिक्रमण की विधि भी समझ लेना चाहिए। उसमें जो विशेषता है वह यह–रात्रिप्रतिक्रमण में प्रथम "मिच्छामि दुक्कडं" कहकर शक्रस्तव पढ़े ॥२५॥

खड़ा होकर विधि से कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग में "लोगस्स उज्जोअगरे" का चिन्तन करे। दूसरा दर्शनशुद्धि के लिये कायोत्सर्ग करे, उसमें भी 'उद्योतकर' का चिन्तन करे ॥२६॥

अथ पाक्षिक प्रतिक्रमण की विधि कहते हैं

पाक्षिक प्रतिक्रमण चतुर्दशी के दिन–किया जाता है। उसमें प्रतिक्रमण सूत्र पर्यन्त प्रथम दैवसिक करके फिर सम्यग् रूपसे आगे लिखे क्रमसे करे ॥३४॥

मुख वस्त्रिका को प्रतिलेखना कर वन्दन दे, फिर "सम्बुद्धा" क्षामणक करे, पाक्षिक आलोचना करे, वन्दन देकर प्रत्येक क्षामणक करे। प्रत्येक क्षामणक के बाद फिर वन्दना, फिर पाक्षिक सूत्र पढ़े ॥३५॥

फिर प्रतिक्रमण सूत्र पढ़कर खड़ा होकर कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग पूरा कर मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन पूर्वक वन्दनक दे तथा पर्यन्त क्षामणा करे। तथा चारथोभ वन्दन करे ॥३६॥

इसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार ही शेष दैवसिक प्रतिक्रमण विधि करे, वन्दनादि देकर भुवन देवी का कायोत्सर्ग करे और अजित शांतिस्तव पढ़े–यह भेद है ॥३७॥

इसी प्रकार चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की विधियां यथाक्रम समझना चाहिये। एवं पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक प्रतिक्रमणों में नाम मात्र की भिन्नता है ॥३८॥

पाक्षिकादि में क्रमशः बारह, बीस, नमस्कार मंगल सहित चालीस 'लोगस्स' का कायोत्सर्ग होता है। 'संबुद्धा' क्षामणक ३, ५ तथा ७ साधुओं को किया जाता है ॥३९॥

इस प्रकार अल्पमति जिन वल्लभगणिने जो याद था वह लिखा सूत्र विरुद्ध, अथवा आचरणा विरुद्ध लिखा हो उसका मिथ्या–दुष्कृत देता हूं ॥४०॥

(पडिक्कमणसामाचारी का भाषांतर)

अब पाक्षिक प्रतिक्रमण की विधि कहते हैं

पाक्षिक प्रतिक्रमण चतुर्दशी के दिन–किया जाता है। उसमें प्रतिक्रमण सूत्र पर्यन्त प्रथम दैवसिक करके फिर सम्यग् रूपसे आगे लिखे क्रमसे करे ॥३४॥

मुख वस्त्रिका को प्रतिलेखना कर वन्दन दे, फिर "सम्बुद्धा" क्षामणक करे, पाक्षिक आलोचना करे, वन्दन देकर प्रत्येक क्षामणक करे। प्रत्येक क्षामणक के बाद फिर वन्दना, फिर पाक्षिक सूत्र पढे ॥३५॥

फिर प्रतिक्रमण सूत्र पढकर खड़ा होकर कायोत्सर्ग करे। कायोत्सर्ग पूरा कर मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन पूर्वक वन्दनक दे तथा पर्यन्त क्षामणा करे। तथा चारथोभ वन्दन करे ॥३६॥

इसके बाद पूर्वोक्त विधिके अनुसार ही शेष दैवसिक प्रतिक्रमण विधि करे, वन्दनादि देकर भुवन देवी का कायोत्सर्ग करे और अजित-शांतिस्तव पढे-यह भेद है ॥३७॥

इसी प्रकार चातुर्मासिक और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण की विधियां यथाक्रम समझना चाहिये। एवं पाक्षिक, चातुर्मासिक, वार्षिक प्रतिक्रमणों में नाम मात्र की भिन्नता है ॥३८॥

पाक्षिकादि में क्रमशः बारह, बीस, नमस्कार मंगल सहित चालीस 'लोगस्स' का कायोत्सर्ग होता है। 'संबुद्धा' क्षामणक ३, ५ तथा ७ साधुओं को किया जाता है ॥३७॥

इस प्रकार अल्पमति जिन वल्लभगणिने जो याद था, वह लिखा सूत्र विरुद्ध, अथवा आचरणा विरुद्ध लिखा हो उसका मिथ्या-दुष्कृत देता हूं ॥४०॥

(पडिक्कमणसामाचारी का भाषांतर)

श्री हरिप्रभसूरिरचित यति दिनकृत्य की प्रतिक्रमण विधि

"अर्द्धं निमग्ने विम्बे, भानोः सूत्रं भणन्ति गीतार्थाः ।
इतिवचनप्रामाण्याद्दैवसिकावश्यके कालः ॥४२॥
अथवाप्येतन्निर्व्याघाते, मुनयस्तथा प्रकुर्वीरन् ।
आवश्यके कृतेसति, यथा प्रदृश्येत तारिकात्रितयम् ॥४३॥
धर्मकथादिव्यग्रे, गुरौ तु मुनयः स्थिता यथास्थानम् ।
सूत्रार्थस्मरणपरा-श्चापृच्छ्य गुरुं प्रतीक्षन्ते ॥४४॥
आवश्यकं विदधते, पूर्वमुखास्तेऽथवोत्तराभिमुखाः ।
श्रीवत्साकारस्थापनां समाश्रित्य तिष्ठन्तः ॥४५॥
आचार्या इह पुरतो द्वौपश्चात्तादनु श्रयस्तस्मात् ।
द्वौ तत्पश्चादेको, रचनेयं नवकगणमानात् ॥४६॥

(हरिप्रभकृत यतिदिनकृत्ये पत्र० ८-९)

भावार्थ—सूर्य मण्डल आधा अस्त हुआ हो उस समय गीतार्थ "करेमि भन्ते" इत्यादि प्रतिक्रमणसूत्र पढते हैं। उक्त वचन की प्रमाणिकता से दैवसिक प्रतिक्रमण का समय भी यही समझना चाहिये। परन्तु यह प्रतिक्रमण समय निर्व्याघात प्रतिक्रमण का समझना चाहिए। इस समय में मुनि निर्व्याघात प्रतिक्रमण करते हैं और इस के समाप्त होने पर आकाश में दो तीन तारे दीखने लगें तब इस की समाप्ति का समय होता है धर्म कथादि करने में गुरु व्यग्र हो उस समय शेष साधु प्रतिक्रमण की मण्डली में अपने अपने स्थानों पर गुरु की आज्ञा लेकर बैठ जाते हैं और सूत्र अर्थका स्मरण करते हुए गुरु की प्रतीक्षा करते हैं।

आवश्यक क्रिया पूर्व तरफ अथवा उत्तर तरफ मुख करके करते हैं। प्रतिक्रमण की मण्डली श्रीवत्स के आकार की बनाकर बैठते हैं। इस मण्डली में आचार्य सबके आगे उनके पीछे दो साधु, उनके बाद ३ साधु, उनके बाद दो और उनके पीछे फिर एक यह क्रम नव सख्यक साधुओं की प्रतिक्रमण मण्डली का है ॥४२-४६॥
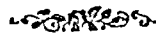
जिनप्रभसूरीय विधिमार्गप्रपा की प्रतिक्रमण विधि-

दैवसिक प्रतिक्रमण विधिः--

श्रावक गुरु के साथ अथवा अकेला 'जावंति चेइयाइ' ये गाथाएँ और प्रणिधान पाठवर्जित चैत्यवन्दन करके चार क्षमाश्रमणों से आचार्यादि का वंदन कर जमीन तल पर मस्तक लगाकर "सव्वस्सवि देवसिय" इत्यादि पाठ से सर्वातिचारों का मिथ्या दुष्कृत करे, उठकर "करेमि भंते" पाठ पढ़कर "इच्छामि ठामि काउस्सग्गं" इत्यादि सूत्र पढ़े, दोनों भुजाएँ लम्बीकर कुहनियों से परिधान को धारण कर नाभि के नीचे और जानुओं के ऊपर चार अंगुल चोलपट्टक रखकर 'संयतिकपित्थादि' दोषरहित कायोत्सर्ग कर यथाक्रम दिनकृत अतिचारों को हृदय में यादकर नमस्कार से कायोत्सर्ग पारे, चतुर्विंशतिस्तव कहकर संदंशक प्रमार्जन कर बैठके विस्तृत बाहु युग से शरीर को न छूता हुआ मुहपत्ती और शरीर की २५-२५ प्रतिलेखनाएँ करे। श्राविका पृष्ठ, सिर, हृदय, सिवाय १५ अंगों की प्रतिलेखनायें करें। मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनानन्तर खड़ा हो बत्तीस दोषरहित, पच्चीस आवश्यक विशुद्ध कृतिकर्म (वंदन) करके अवन-

तांग होकर दोनों हाथों में विधिपूर्वक रजोहरण मुखवस्त्रिका पकड़कर देवसिक अतिचारों को गुरु के आगे प्रकट करने के लिये आलोचना पाठ पढ़े। बाद में मुहपत्ति से कटासन अथवा पाद प्रोंछन की प्रति-लेखना कर बायाँ पग नीचे और दाहिना जानु ऊँचाकर दोनों हाथों से मुखवस्त्रिका पकड़ कर प्रतिक्रमण सूत्र पढ़े। सूत्र की समाप्ति में दो वंदनक देकर द्रव्य भाव से खड़ा होकर "अब्भुट्ठियोमि आदि पाठ से मंडली में ५ साधु हों तो तीन को क्षमाना, प्रतिक्रामक साधु सामान्य हों तो स्थापनाचार्य को खमाने के बाद ३ साधुओं को "अब्भुट्ठियो" खमाना चाहिये। फिर कृतिकर्म करके खडा हो सिर पर हाथ जोड़ करके "आयरिय उवज्झाए" इत्यादि तीन गाथाएँ पढ़े। सामायिक सूत्र और कायोत्सर्ग दंडक पढ़कर चारित्राचार की विशुद्धि के लिए दो चतुर्विंशतिस्तव का कायोत्सर्ग करे। गुरु के कायोत्सर्ग पारने पर कायोत्सर्ग पारे, सम्यक्त्व शुद्धयर्थ उद्योतकर पढ़कर "सव्वलोए अरिहत" चैत्याराधनार्थ कायोत्सर्ग करे, उद्योतकर का चिन्तन करे। पारकर श्रुतशुद्धयर्थ "पुक्खरवरदीवड्ढे" पढ़े, फिर उद्योतकर १ का कायोत्सर्ग करे, पारकर सिद्धस्तव पढ़के श्रुत-देवता का १ नमस्कार का कायोत्सर्ग करे उसकी स्तुति बोले, अथवा सुने। इसी प्रकार क्षेत्र देवता का कायोत्सर्ग कर १ नमस्कार का चिन्तन करे। पार कर स्तुति कहे वा सुने और नमस्कार मंगल पढ़कर संदंशक प्रमार्जन पूर्वक बैठकर प्रथम की तरह मुहपत्ति प्रति लेखनाकर वंदनक दे "इच्छामो अणुसट्ठि" यह बोलकर दोनों जानुओं के बल बैठकर वर्धमान अक्षरस्वर से तीन स्तुतिया पढ़कर शक्रस्तव तथा स्तोत्र पढ़के आचार्यादि को वन्दन करे। प्रायश्चित्तविशोधनार्थ कायोत्सर्ग करके उद्योतकर ४ का चिंतन करे।

(इति दैवसिक प्रतिक्रमण विधि)

कायोत्सर्ग करे, कायोत्सर्ग पार करके ऊपर उद्योतकर पढ़के मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करे और वन्दनक देके समाप्तिक्षामणा कर चार स्तोभ वन्दनों से तीन तीन नमस्कार कर नत मस्तक होकर पढ़े, आगे शेष देवसिक प्रतिक्रमण करे। विशेष यह है कि श्रुत देवता की स्तुति के बाद भवन देवता का कायोत्सर्ग ८ श्वासोच्छ्वास परिमति कर उसकी स्तुति बोले या सुने, स्तव के स्थान में अजित शांति स्तव पढ़े। इसी प्रकार चातुर्मासिक, सांवत्सरिक प्रतिक्रमणका नाम बोले। पाक्षिक कायोत्सर्ग में जहां १२ उद्योतकरों का चिन्तन होता है वहां चातुर्मासिक में २० का और सांवत्सरिक में ४० उद्योतकर १ नमस्कार का चिन्तन होता है तथा पाक्षिक में ५ साधुओं में से ३ को संबुद्धक्षामणा किया जाता है। चौमासी में ७ में से ५ को और सांवत्सरिक में ६ आदि में से ७ को क्षमाया जाता है। २ साधु शेष अवश्य रहने चाहिये। तथा सांवत्सरिक में भवन देवता का कायोत्सर्ग नहीं किया जाता, न स्तुति बोली जाती है। अस्वाध्यायिक का कायोत्सर्ग नहीं किया जाता। रात्रिक देवसिक में "इच्छामोऽणुसट्ठिं" पढ़ने के बाद गुरु के एक स्तुति कहने बाद मस्तक पर अंजलि करके "नमो खमा समणाणं" यह कहकर अथवा सिर पर हाथ जोड़कर अन्य साधु वर्धमान ३ स्तुतियां बोलते हैं, तब पाक्षिक में गुरुद्वारा तीनों स्तुतियां बोलने के बाद शेष साधु वर्धमान ३ स्तुतियां बोलते हैं। यह पाक्षिक प्रतिक्रमण की विधि हुई।

प्रतिक्रमण में प्रक्षेपों की परम्परा–

आचार्य जिनप्रभसूरिजी कहते हैं–देवसिक प्रतिक्रमण में प्राय-श्चित्त का कायोत्सर्ग करने के बाद क्षुद्रोपद्रव ओहडा वणिय शत

परिमित श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करके दो क्षमाश्रमणों से स्वाध्याय के आदेश मांगकर जानुओं के बल बैठकर तीन नमस्कार पढ़ने के बाद विघ्न के अपहारार्थ श्रीपार्श्वनाथ को नमस्कार, शक्रस्तव और "जावंति चेइयाइं" यह गाथा पढ़कर क्षमाश्रमणपूर्वक "जावंत केइ विसाहू" यह गाथा और पार्श्वनाथ का स्तव योगमुद्रा से और प्रणि-धान की दो गाथायें "मुक्ताशुक्ति मुद्रा से" पढ़के क्षमाश्रमणपूर्वक सिर नवांकर "सिरिथंभणयपुरट्ठियपाससामिणो" इत्यादि दो गाथायें पढ़कर "वंदण वत्तियाए" इत्यादि पाठ बोले और ४ लोगस्स का कायोत्सर्ग कर चतुर्विशतिस्तव पढ़े। यह प्रतिक्रमण विधि शेष पूर्व पुरुष परंपरागत है। "आयरणा विहु आणा" इस वचन से कर्तव्य ही है। जैसे स्तुति त्रिक पठनानंतर शक्रस्तव, स्तोत्र, प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करते हैं।

पूर्वकाल में गुरु द्वारा एक स्तुति बोलने पर सर्व साधुओं के वर्धमान स्तुतित्रय पठनपर्यंत प्रतिक्रमण था। इसीलिए स्तुतित्रय पाठ के बाद में छिन्दन (आडो) का दोष नहीं माना जाता।

श्री जिनप्रभुसूरिजी आड के अर्थ में "छिन्दन" शब्द लिखते हैं और इसके एकार्थक नाम-"छिन्दन, अन्तरणि, आगलि" बताते हैं। छिन्दन पर विवेचन करते हुए आचार्य कहते हैं-छिन्दन दो प्रकार का होता है-आत्मकृत और परकृत। अपने शारीरिक अंग आदि का बीच में चलना "आत्मकृत छिन्दन" है और मार्जारी आदि अन्य प्राणी का बीच में होकर निकलना उसे "परकृत छिदन" कहते हैं।" पाक्षिक प्रतिक्रमण में प्रत्येक क्षामणक करने वालों को पृथक् आलोचक को छोड़ किसी का "छिन्दन दोष नहीं होता"। इसी कारण से तो

हमारी सामाचारी में प्रत्येक क्षामणा के बाद मुहपत्ती पडिलेही नहीं जाती। यदि कभी मार्जारी-छिन्दन कर दे तो।–

"जासा करडी कब्बरी, अंखिहिं कक्कडि यारि।

मंडलि मांहि संचरीय, हय-पडिहय मज्जारि ६।"

उपर्युक्त गाथा का चौथा पद 'तीन बार' पढ़कर क्षुद्रोपद्रव अपद्रावणार्थ कायोत्सर्ग करना और शांतिनाथ के नमस्कार की उद्घोषणा करना। कारण विशेष से जुदा प्रतिक्रमण अथवा आलोचना करने वाले साधु प्रतिक्रमण के बाद तुरंत गुरुवंदन करके आलोचना क्षामणक प्रत्याख्यान कर लें। प्रतिक्रमण पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर करना चाहिये।

प्रतिक्रामक श्रमणों की मंडली श्रीवच्छाकार होनी चाहिए। श्रीवच्छ मण्डली का आकार निम्नलिखित गाथा में बताया है।

"आयरिया इह पुरओ, दो पच्छा तिन्नि तयण दो तत्तो।

तेहिं वि पुणो इक्को, नवगणमाणा इमा रयणा॥१॥

अर्थ—मंडली में "आचार्य सबके आगे, आचार्य के पीछे दो साधु, दो के पीछे तीन, तीन के पीछे फिर दो और दो के पीछे एक" इस प्रकार की प्रतिक्रमण मण्डली साधुओं के समुदाय की होती है। स्थापना इस प्रकार है–

रात्रिक प्रतिक्रमण विधि—

दैवसिक प्रतिक्रमण रात्रि के पहले प्रहर तक करना चाहिए है रात्रिक प्रतिक्रमण आवश्यक चूर्णि के अभिप्राय से दिवस के प्रथम प्रहर तक और व्यवहार के अभिप्राय से पुरिमार्द्ध तक हो सकता है।

"जो वट्टमाण मासो, तस्स य मासस्स होइ जो तइओ।
तन्नामयनक्खत्ते, सीसत्थे गोस पडिक्कमणं ॥१॥"

अर्थ—जो मास चलता हो उससे तीसरे मास के नाम का नक्षत्र मस्तक पर आये तब रात्रिक प्रतिक्रमण होता है। जैसे वर्तमान मास श्रावण है तो आश्विन मास उसका तीसरा हुआ, आश्विन का नाम नक्षत्र अश्विनी है, वह मध्याकाश में आये तब समझना कि रात्रिक प्रतिक्रमण का समय हो गया।

रात्रिक प्रतिक्रमण में आचार्यादि ४ को वांदकर भूमि ऊपर शिर रखके "सव्वस्सवि राइय" इत्यादि पाठ बोलकर शक्रस्तव पढ़े और खड़ा होकर सामायिक, कायोत्सर्ग सूत्र पढ़ कायोत्सर्ग करे उद्योतकर का चिन्तन कर पार कर उद्योतकर पढ़कर दूसरा कायोत्सर्ग करे, दूसरे में भी उद्योतकर का चिन्तन कर श्रुतस्तव पढ़कर तीसरा कायोत्सर्ग कर यथाक्रम रात्रिक अतिचारों को याद करे, सिद्धस्तव पढ़ के सडांसक प्रमार्जन कर बैठके मुहपत्ति की प्रतिलेखना करे, वन्दनक दे और पूर्ववत् आलोचना सूत्रपठन वन्दनक, क्षामणक, वन्दनक, गाथात्रिक पठन, कायोत्सर्ग सूत्रोच्चार-णादि करके षाण्मासिक तप चिन्तन का कायोत्सर्ग करे उसमें विचारे—"श्रीवर्धमान जिनके तीर्थ में षाण्मासिक तप वर्तमान है, पर मैं इसे कर नहीं सकता—इसी प्रकार एक एक दिन कम करता हुआ उनतीस दिन कम कर उनतीस दिन कम छः मास भी नहीं क

सकता, ऐसे पांच, चार, तीन, दो, एक मास भी नहीं कर सकता, यावत् तेरह दिन कम मास, चोतीस भक्त बत्तीस भक्त आदि दो दो भक्त कम करता हुआ यावत् चतुर्थ भक्त आयंबिल, निर्विकृतिक एकाशनादि से उतरता हुआ पोरषी, नमस्कार सहित पर्यन्त में से जो तप कर सकता हो वह मन में निश्चित कर कायोत्सर्ग पारे। उद्योतकर पढ़कर मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनापूर्वक वंदनक देकर कायोत्सर्ग में चिंतित तपका गुरु-मुख से अथवा स्वयं प्रत्याख्यान करे, बाद में "इच्छामोऽणुसट्ठि" कहता हुआ जानुओं के बल बैठकर

तीन वर्धमान स्तुतियाँ पढ़कर मंद स्वर से शक्रस्तव पढ़े। खड़ा होकर "अरिहंत चेइयाणं" इत्यादि पाठपूर्वक चार स्तुतियों से चैत्यवन्दन करे। "जावंति चेइयाइं" इत्यादि दो गाथायें, स्तव और प्रणिधान गाथाएँ न पढ़े" बाद आचार्यादि को वंदन करे, समय होने पर प्रतिलेखनादि करे। इति रात्रिक प्रतिक्रमण विधि।

(प्रतिक्रमण सामाचारी समाप्ता)

रात्रिक प्रतिक्रमण विधि—

देवसिक प्रतिक्रमण रात्रि के पहले प्रहर तक करना सूझता है, रात्रिक प्रतिक्रमण आवश्यक चूर्णिक अभिप्राय से दिवस के प्रथम प्रहर तक और व्यवहार के अभिप्राय से पुरिमार्ध तक हो सकता है।

"जो वट्टमाण मासो, तस्स य मासस्स होइ जो तइओ।
तन्नामयनक्खत्ते, सीसत्थे गोस पडिकमणं ॥१॥"

अर्थ—जो मास चलता हो उससे तीसरे मास के नाम का नक्षत्र मस्तक पर आये तब रात्रिक प्रतिक्रमण होता है। जैसे वर्तमान मास श्रावण है तो आश्विन मास उसका तीसरा हुआ, आश्विन का नाम नक्षत्र अश्विनी है, वह मध्याकाश में आये तब समझना कि रात्रिक प्रतिक्रमण का समय हो गया।

रात्रिक प्रतिक्रमण में आचार्यादि ४ को वांदकर भूमि तलपर शिर रखके "सव्वस्सवि राइय" इत्यादि पाठ बोलकर शक्रस्तव पढ़े और खड़ा होकर सामायिक, कायोत्सर्ग सूत्र पढ़ कायोत्सर्ग करे उद्योतकर का चिन्तन कर पार ऊपर उद्योतकर पढ़कर दूसरा कायोत्सर्ग करे, दूसरे में भी उद्योतकर का चिन्तन कर श्रुतस्तव पढ़कर तीसरा कायोत्सर्ग कर यथाक्रम रात्रिक अतिचारों को याद करे, सिद्धस्तव पढ़ के सडाशक प्रमार्जन कर बैठके मुहपत्ति की प्रतिलेखना करे, वन्दनक दे और पूर्ववत् आलोचना सूत्रपठन वन्दनक, क्षामणक, वन्दनक, गाथात्रिक पठन, कायोत्सर्ग सूत्रोच्चारणादि करके षाण्मासिक तप चिन्तन का कायोत्सर्ग करे उसमें विचारे—"श्रीवर्धमान जिनके तीर्थ में षाण्मासिक तप वर्त्तमान है, पर मैं इसे कर नहीं सकता—इसी प्रकार एक एक दिन कम करता उनतीस दिन कम कर उनतीस दिन कम छः मा